जी उठी
जहाजवाली नदी

प्रो. मोहन श्रोत्रिय
अविनाश

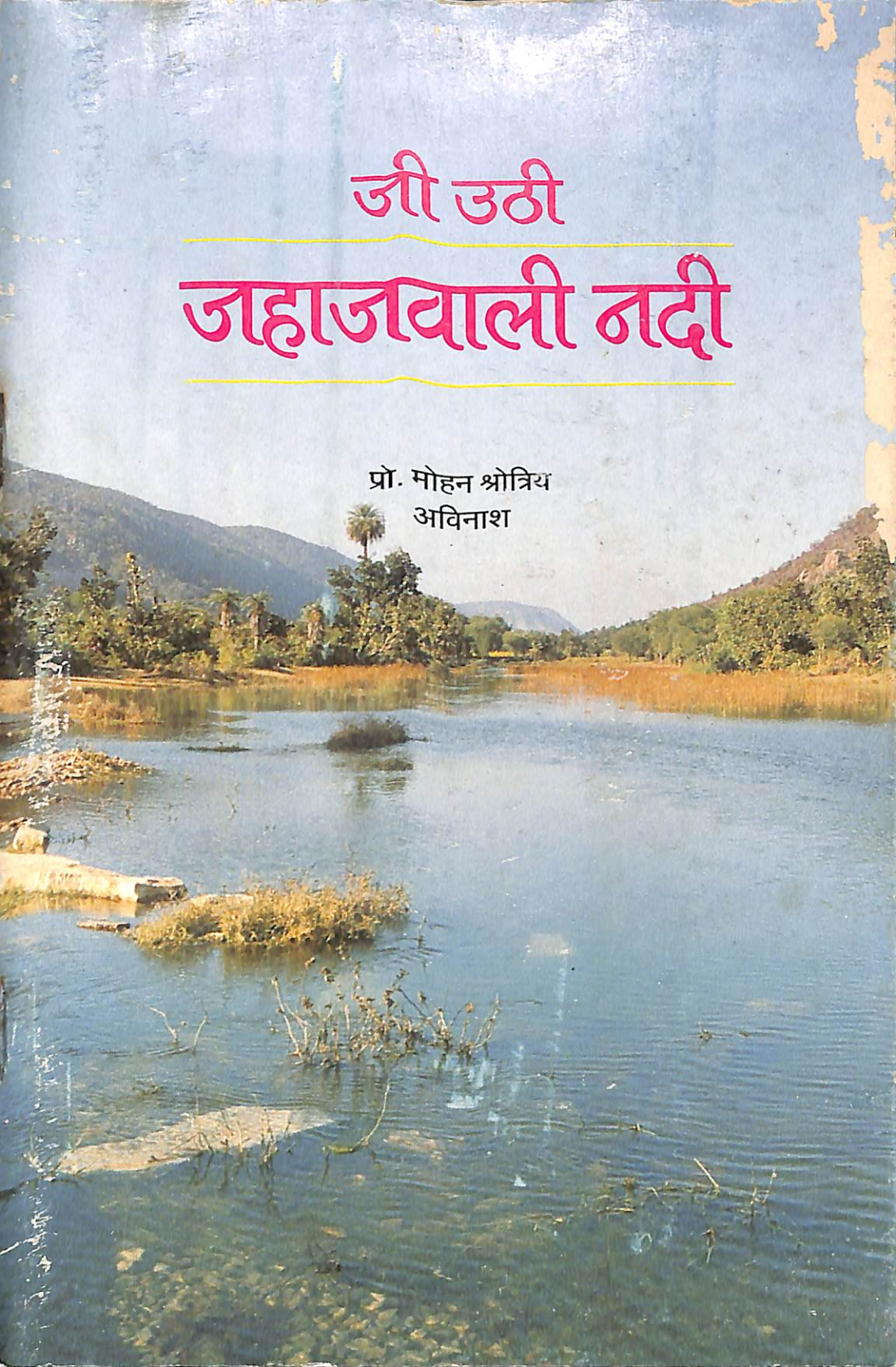

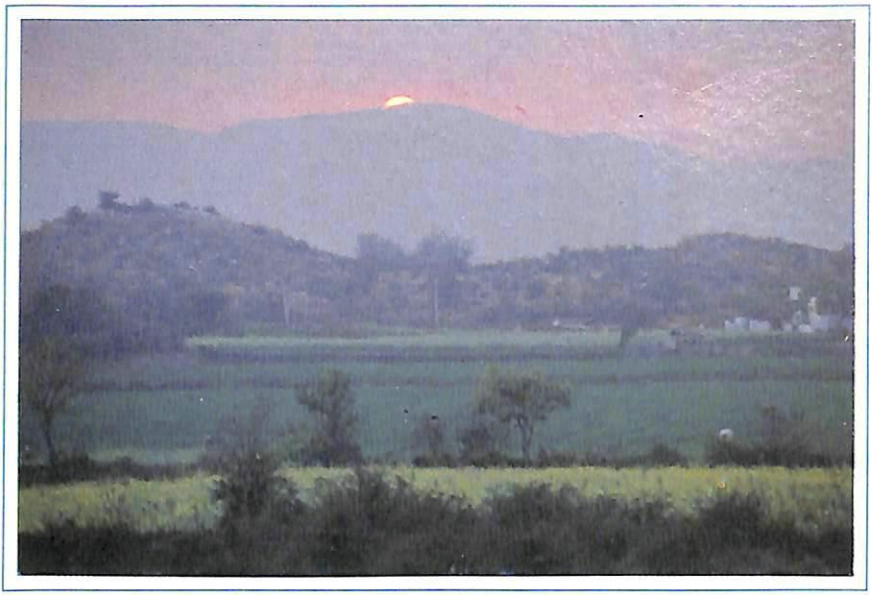

जहाज नदी के जलागम क्षेत्र में बदलती प्राकृतिक दृश्यावली

चड़स खींचते बैल : सिंचाई का पारंपरिक तरीका

प्रस्तावना

सरिस्का की सुंदरतम घाटियों में आज जहाज के जंगल को भी गिना जाता है। यहां अरावली में पाये जाने वाले सभी सुंदर वृक्ष धोंक, कदंब, सालर, कालाखैर, बेर, काला पापड़ा, अमलतास के साथ नम क्षेत्रों वाले खजूर एवं ढाक के वृक्षों से घिरी एक किलोमीटर लंबी सुंदर पहाड़ियों वाली घाटी झील है जिसमें जलचर क्रीड़ा करते हैं। इन्हें देखकर बाघ की जीभ ललचाती रहती है। सांभर भी कभी-कभी इस झील में घुस कर अपने प्राण बचाता है। यहां पहुंच कर जंगली जीव तथा मानव पहाड़ी पारिस्थितिकी तंत्र एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का आनन्द एक साथ ही उठाते हैं।

एक जमाना था, जब इस क्षेत्र में बसे लोगों पर बाघ के शिकार के आरोप लगते रहते थे। इनके खिलाफ लंबे मुकदमे भी चले थे। मुझ पर 13 मई 1988 के दिन बाघ का शिकार करने का केस इसी जंगल में बना दिया गया था। लेकिन बाघ तो इस जंगल में दूर-दूर तक नहीं था और मैं भी वहां नहीं था। इसीलिए मैं शिकारी नहीं बनाया जा सका। बाघ से नीचे के जानवर का शिकार करने का आरोप भी उतना ही गंभीर होता है। पर ये जानवर भी इस जंगल में नहीं बचे थे। सब प्यासे मर गये थे। शेष यहां से अन्यत्र चले गये थे। इन इलाकों में परताराम गुर्जर, लक्ष्मण गुर्जर, चतरा, रामकुमार, भगवान सहाय गुर्जर (गुवाड़ा), भंभू, सूरजा, सोबला, हरलाल आदि (बांकाला), प्रभात, बब्बू, संपति माई, हरिकिशन, रामधन (देवरी) आदि ने मिलकर जल-जंगल प्रबंधन के कार्यों का नेतृत्व किया। केदार पण्डित, बाला सहाय (टहला) का बहुत योगदान रहा है। तरुण भारत संघ के ये सभी कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र हैं क्योंकि इन्होंने इस क्षेत्र में बाघ व पानी की वापसी के लिए महान काम किया है। इसका लाभ गुर्जरों की लोसल, ब्राह्मणों की लोसल, तालाब, लाडिया का गुवाड़ा, राडा, नाडू, मुरलीपुरा, चावा का बास,राडी, नायाला, तलाब, टहला, घेवर, रूपवास, राजडोली तक को मिला है। इन गांवों के भी सभी लोगों को धन्यवाद ज्ञापित करता हूं। इन्होंने भी अपने-अपने गांवों में जोहड़-बांध-नाला बंडिंग-मेड़बंदी आदि जल संरचनाओं का निर्माण किया तथा जंगल बचाये। इन सब गांवों के साझे प्रयास से ही **जहाजवाली नदी** पूरे साल बहने लगी है। मुझे पूरा विश्वास है कि जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र के सभी गांववासी पानी का मर्यादित उपयोग करेंगे।

हमारी संकल्पना है कि हमारी समाज व्यवस्था इस तरह की हो कि हम अपनी जरूरतों को अपने क्षेत्र के उत्पादन के भरोसे ही पूरा करें। बाजार के दमनकारी प्रभाव से बचे रहकर ही यह संभव है। बाजार के शिकंजे में फंसकर तो उपभोक्ता समाज ही बन सकता है। जल-जंगल और जंगली जीव बचे नहीं रह सकते। उम्मीद इस बात में दिखती है कि 1995 के बाद गांव की नियमित बैठकों में ढील, संकट के दूर हो जाने पर आने

वाली उदासीनता का सहज प्रभाव माना जा सकता है। लेकिन आज भी ये जिस प्रकार गांव के सामलाती काम जल, जंगल बचाने से लेकर आपसी विवाद मिटाने तक करते हैं हमारा ग्रामीण समाज इस खतरे को समझता है। तभी तो यह समाज धराड़ी परंपरा की विवेकपूर्ण तरीके से पुनर्स्थापना की बात सोच रहा है। जंगल संरक्षण यज्ञ कर रहा है। मार्बल खदानों के विरुद्ध बिगुल बजा रहा है। पूरी अरावली में चेतना पदयात्राएं आयोजित करके सचेत रहने के संकेत दे रहा है।

हमारा समाज मनुष्य मात्र से ऊपर उठकर देखने की दृष्टि रखता है। सब संकटों से बचाव के तरीके भी हमारे अपने हैं। यूं तो हम से हमारे अपने तरीके भुलाने-छुड़ाने के प्रयास कम नहीं हुए हैं, फिर भी हमारा समाज इस खतरे के प्रति सजग है। अपने अतीत से हम बहुत सीख सकते हैं। बशर्ते हम सही चीजों को याद रखें। इस क्षेत्र के लोगों ने जोहड़ बनाने की अपनी साझी परंपरा को फिर से अपनाया है। और सूख गयी नदियों को फिर से बहाकर सूखे यानी **डार्क ज़ोन** को सजल यानी **व्हाइट ज़ोन** बना दिया है। इस कामयाबी के लिए सबको दिल से बधाई दी ही जानी चाहिए।

प्राणियों में सद्भावना हो, जीव जगत का कल्याण हो - यह हमारे चिंतकों मनीषियों का संदेश है, जो जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र में पूरी तरह साकार हुआ है। यहां के समाज ने सभी प्राणियों के लिए जहाजवाला बांध बस्ती से मीलों दूर ठेठ जंगल के बीचों-बीच बनाया है। इसको बनाने का एकमात्र उद्देश्य जीव मात्र के लिए जल उपलब्ध कराना है। इस कार्य में साधु समाज का भी सहयोग सराहनीय रहा है। जहाज क्षेत्र में जंगल, जल तथा बाघ की वापसी की मुख्य ऊर्जा हमारी परंपरा से आयी है। हमारी परंपरा के सकारात्मक तत्व निरंतर विकसित होते रहें, बस यही कामना है।

जी उठी जहाजवाली नदी की कथा को रोचक रूप में प्रस्तुत करने का काम **प्रो. मोहन श्रोत्रिय** एवं युवा कवि **अविनाश** ने किया है। मैं इनके प्रति विशेष कृतज्ञता इसलिए भी ज्ञापित करना चाहता हूं कि इन्होंने न केवल कथा का बखान किया है, बल्कि **फिर से जी उठने वाली नदी** के प्रभाव का भी वस्तुपरक अध्ययन किया है। प्रभाव जो इस क्षेत्र के लोगों के जीवन में तरह-तरह से देखा जा सकता है और जिसे देखकर आह्लादित भी हुआ जा सकता है। राजेन्द्रसिंह, गोविलजी, पुष्पेन्द्रसिंह चौहान, श्री बी.डी. शर्मा, आर.जी. सोनी, तेजवीर सिंह, फतेहसिंह राठौड़, के.एल.सैनी, एल.पी.शर्मा, उदयराम, वी.एम. शर्मा, आदि वन विभाग के अधिकारी, कर्मचारियों का आभार प्रकट करता हूँ। विभाग के सहयोग से ही हम जहाजवाली नदी को पुनः जीवित कर सके हैं।

राजेन्द्र सिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

जी उठी जहाजवाली नदी

सरिस्का के कोर क्षेत्र - एक में पड़ने वाली एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण नदी है, **जहाजवाली नदी**। इस नदी का आधे से अधिक हिस्सा सरिस्का के कोर क्षेत्र में पड़ता है। सरकार ने जब से सरिस्का को नेशनल पार्क घोषित किया है, तब से इस क्षेत्र में जल और जंगली जानवरों के अलावा कुछ भी होना नाजायज है। शाहराहों के इर्द-गिर्द मंडराते ये नियम-कायदे आदमी और संवेदना के खिलाफ खड़े होते हैं। वन विभाग जंगल की कथित सुरक्षा के बरक्स आदमी को खारिज कर दिये जाने लायक वस्तु समझता है। सरिस्का जोन में पड़ने वाले गांव के गांव इसी वजह से उपेक्षा की बाढ़ में बहते रहने के लिए विवश हैं। इसी विवशता में वर्षों से जी रहे एक गांव देवरी के जंगल से शुरू होती जहाजवाली नदी की जलधारा।

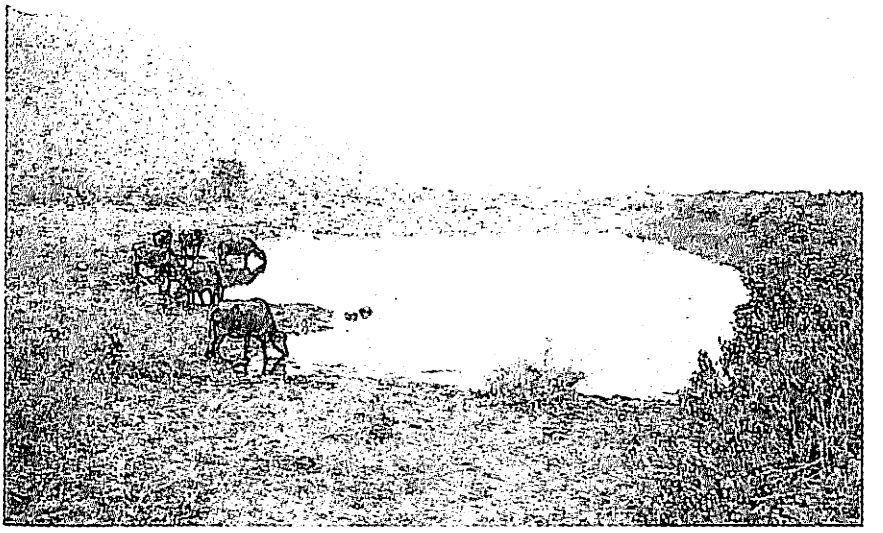

जहाजवाली नदी की शुरुआत, रामसागर

इस नदी के जलागम क्षेत्र के तीन गांव सरिस्का के मुख्य कोर क्षेत्र में पड़ते हैं। 1978 में यहां बाघ परियोजना की शुरुआत के साथ पूरे सरिस्का के 866 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को **बफर** और **कोर**, दो क्षेत्रों में बांट दिया गया। 498 वर्ग किलोमीटर **कोर** क्षेत्र में आया और 368 वर्ग किलोमीटर **बफर** क्षेत्र में आया। **कोर** क्षेत्र घोषित होने वाला इलाका *रिजर्व फॉरेस्ट* रहा है। **कोर** क्षेत्र भी तीन भागों में बंटा। पहला मुख्य **कोर** क्षेत्र, दूसरा और तीसरा **कोर** क्षेत्र। मुख्य **कोर** क्षेत्र ही राष्ट्रीय अभयारण्य में तब्दील है। इसमें करीब दस गांव ग्वाड़े हैं, जिनमें जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र में उक्त तीन गांव ही हैं।

ऐसे बनती है यह नदी....

सोहना से आने वाली धारा का जहाज से आने वाली मुख्य धारा में मिलने का स्थान : ग्राम नांडू

जहाजवाली नदी गुवाड़ा देवरी के जंगलों से शुरू होकर जहाज के पास होते हुए नांडू, मुरलीपुरा, घेवर गांव से गुजरती है और राजडोली के पास से निकलकर टहला के मंगलसर बांध में पहुंचती है। इसकी दूसरी धारा सोहना के जंगल से शुरू होकर नांडू के पास मुख्य धारा में मिलती है। तीसरी धारा गुर्जरों की लोसल से शुरू होती है। फिर चावा का बास होते हुए घेवर के पास जाकर मुख्य धारा में मिल जाती है। उसके बाद घेवर गांव के पहाड़ों से निकलकर कई छोटी-छोटी धाराएं राजडोली के जोहड़ में होते हुए मंगलसर बांध में आकर मिल जाती हैं। इस नदी की कुल लंबाई लगभग तीस किलोमीटर है। जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र में तरुण भारत संघ ने अभी

तक कुल 83 बांध और जोहड़ बनाये हैं। इन बांधों के पुनर्सिंचन के कारण अब यह नदी पूरे साल भर बहने लगी है।

यों हुई जोहड़ों की शुरुआत...

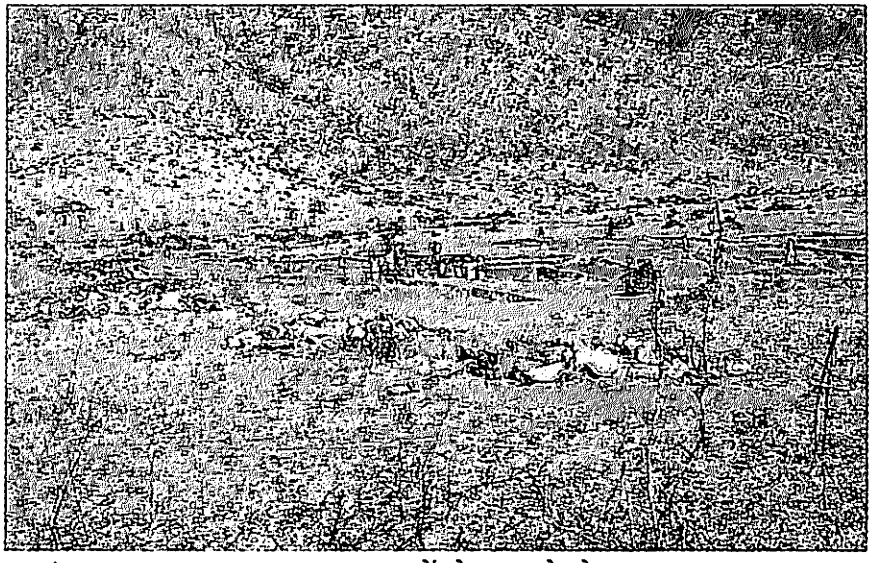

चावा का बास में जोहड़ बनाते लोग

इस नदी का जलागम क्षेत्र ज्यादातर सरिस्का के **कोर** व **बफर** क्षेत्रों में ही पड़ता है। बीस साल पहले तक इन जंगलों में जहाजवाला झरना अबाध

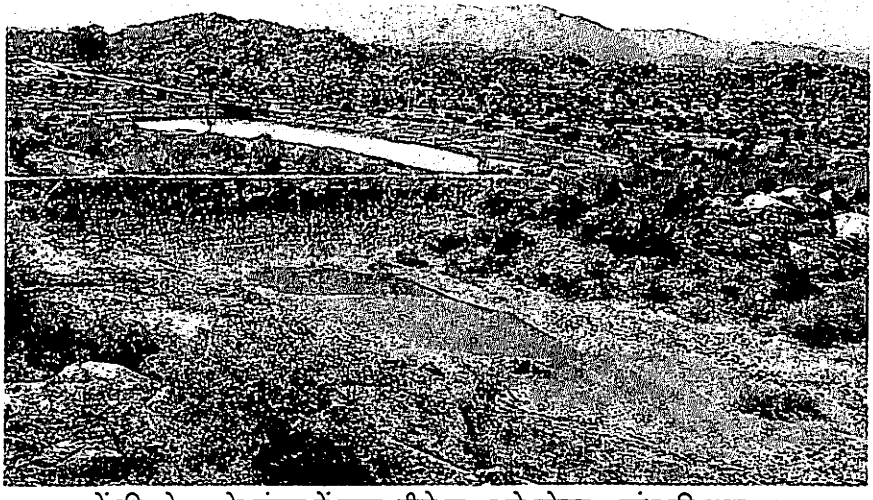

ब्राह्मणों की लोसल के जंगल में ऊपर-नीचे बनाए दो जोहड़ - बांध की पाल पर बनाया मंदिर - पूजागृह भी और जोहड़ों की निगरानी का स्थल भी

गति से बहा करता था। पूरे साल। लेकिन जंगलों की अंधाधुंध कटाई और पानी की कमी होने से यह झरना 1985 में पूरी तरह सूख गया। इस झरने के

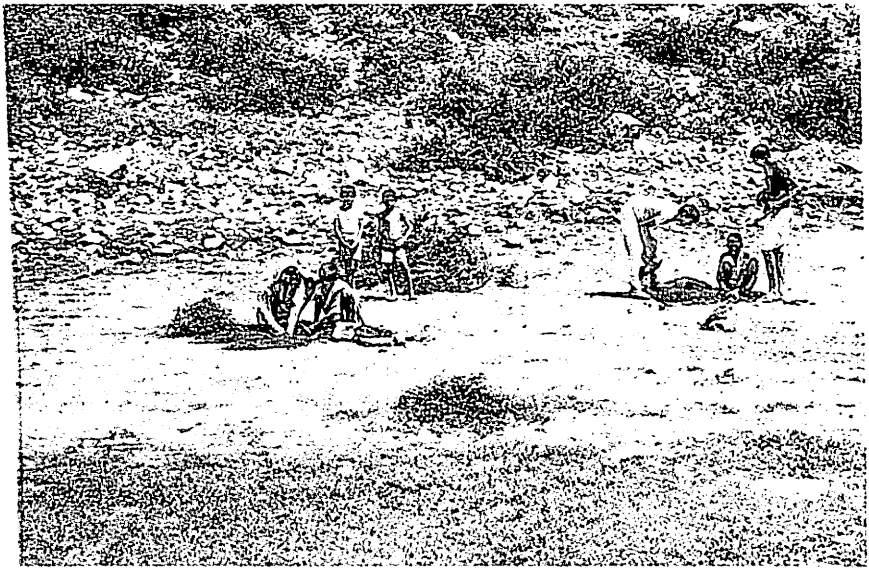

गुर्जरों की लोसल में पेड़ लगाते लोग, 1987

किनारे मौनी बाबा का आश्रम है। आश्रम में लोगबाग आते-जाते रहते हैं। पानी का संकट गहराया, तो लोगों ने इधर से गुजरना ही छोड़ दिया। आश्रम वीरान होना शुरू हुआ, तो **मौनी बाबा** से रहा नहीं गया। वह उपाय तलाशने

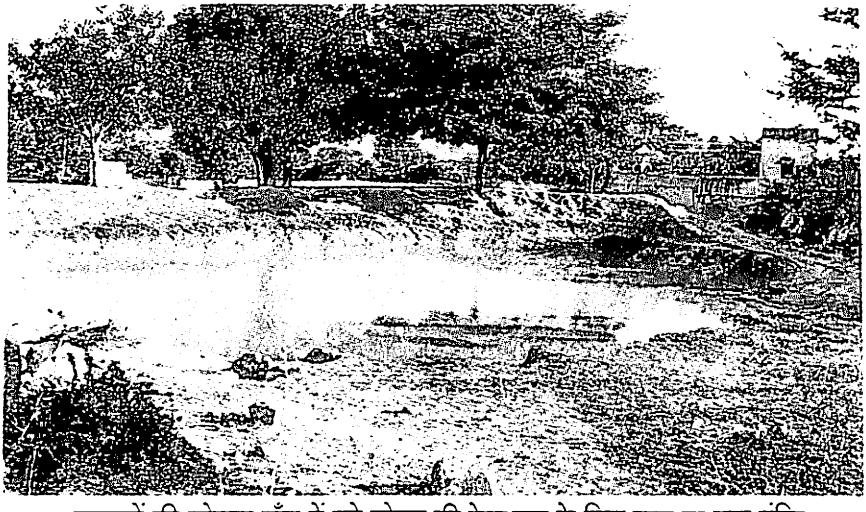

ब्राह्मणों की लोसल गाँव में बने जोहड़ की देखभाल के लिए पाल पर बना मंदिर

लगे कि क्या किया जाये। उस समय तरुण भारत संघ का काम शुरू हो गया था। बाबा ने संघ के बारे में सुनकर अपने शिष्यों को संघ के कार्यकर्ताओं के पास भेजा। मौनी बाबा के शिष्यों ने कार्यकर्ताओं के साथ **जहाजवाली नदी** पर बांध बनाने के सिलसिले में चर्चा शुरू की। कुछ ही दिनों बाद **जहाजवाली नदी** पर आश्रम के पास बांध बनकर तैयार हो गया। इस बांध का नाम जहाजवाला बांध रखा गया। इस बांध को बनाने हेतु तरुण भारत संघ को कड़ा संघर्ष करना पड़ा। यह संघ द्वारा बनाये गये बड़े बांधों में से एक है। इसको बनाने में लोगों का व्यापक सहयोग मिला।

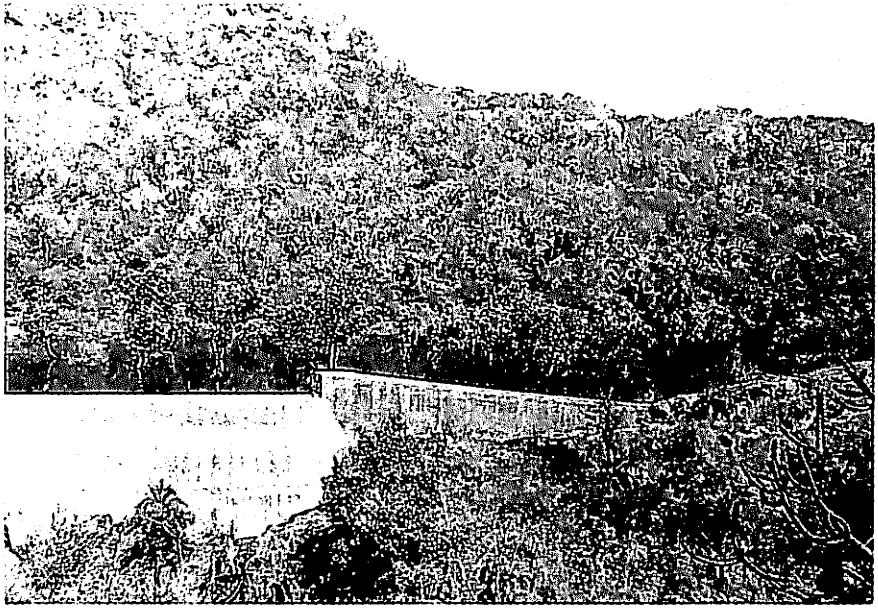

जहाजवाला बांध, देवरी

वन्य जीवों ने ली राहत की सांस....

जब जहाजवाला बांध शुरू हुआ था, तो जंगलात विभाग वालों ने बाधा डालना शुरू कर दिया। उन्हें तरुण भारत संघ के काम रास आ भी कैसे सकते थे ! उन लोगों ने तरुण भारत संघ के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की प्रक्रिया शुरू कर दी। परंतु जब तक यह प्रक्रिया पूरी हुई, जहाजवाला बांध बनकर तैयार हो चुका था। अंततः जंगलात विभाग ने लोगों के संगठन और दबाव के कारण ही यह प्रक्रिया समाप्त कर दी। अब विभाग के लोगों ने बांध को तुड़वाने का दूसरा उपाय सोचा और भारत के एक जाने-माने पर्यावरणविद् को जंगल एवं

जंगली जीवों पर इस बांध का प्रभाव (इंपैक्ट ऑन वाइल्ड लाइफ इन फॉरेस्ट) मूल्यांकन करने हेतु भेजा। उक्त पर्यावरणविद् ने अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि बांध बनने से अब जंगल में पानी की कमी नहीं रहती है। जंगली जीवों को सहज ही पानी मुहैया हो गया है। यही नहीं, इस बांध के बनने से **जहाजवाली नदी** की जलधारा साल भर बहने लगी है।

जहाज के जंगल में मस्ती करता बाघ (चित्र : तेजवीर सिंह चौधरी)

निष्कर्ष में कहा गया कि अब जंगली जीवों का शिकार करने वाले शिकारियों को भी मुश्किलें आएंगी। उन्हें शिकार करने के लिए जंगली जानवर नियत जगह पर नहीं मिल पाएंगे। क्योंकि जंगली जानवर कहां पानी पीने आएगा, इसका कोई भरोसा नहीं है। साथ ही साथ ग्रामीण मवेशियों और जंगली जीवों का जो पानी के लिए स्वार्थ-संघर्ष चलता था, वह भी इस बांध के बनने से खत्म हो गया है। पहले जंगली जीव कुओं पर मवेशियों के लिए रखे गये पानी को पी जाते थे। इस वजह से कई बार ग्रामीण इन जंगली पशुओं को शिकारियों की मदद से मरवा डालते थे। अब यह संघर्ष खत्म हो गया है। जाहिर है, इस तरह के बांध जंगल में बनने ही चाहिए। इससे जंगल और जंगली जानवरों को बहुत ही लाभ होगा। इस अध्ययन के बाद भविष्य में जंगल संरक्षण का काम करने के लिए राजस्थान सरकार के मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक ने तरुण भारत संघ से अनुरोध किया कि इस तरह का निर्माण कार्य करते रहें। सरकार आपके कार्यों में मदद करेगी।

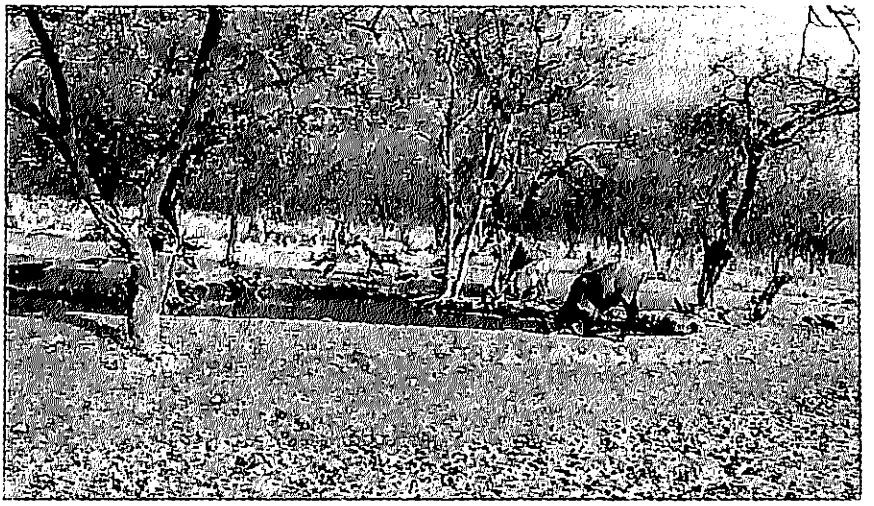

ब्रह्मनाथ के जंगल में निर्भय विचरण करते जानवर (चित्र : तेजवीर सिंह चौधरी)

जहाजवाली नदी पर बांध बनने के फायदों और जंगलात विभाग वालों की हार से इस क्षेत्र के लोग बहुत उत्साहित हुए। उन्होंने जहाजवाले बांध के ऊपर भी बांकाला, गुवाड़ा देवरी तथा गांव देवरी में 11 छोटे-बड़े जोहड़ तथा बांध बनाये। एक के बाद एक। इनका पानी भी जहाजवाली नदी की इस धारा में आता रहता है। अब पालतू पशुओं और जंगली जानवरों के लिए पानी की कोई कमी नहीं रह गयी है। एक जमाना था, जब ये तीनों गांव अपने मवेशियों को लेकर फागुन में ही गांव खाली करके नीचे आ जाते थे। वही जमाना था जब यहां की महिलाएं कहा करती थीं, **था म्हाणे जाणवरों के बरब्बर करवा दै, म्हारो वोट तू लै जा।** वह जमाना था आदमी और जानवर के एक ही घाट पर पानी पीने का। पर तरजीह जानवरों को ही अधिक मिलती थी। जानवर बेफिक्री से घूम सकते थे, लेकिन आदमी नाजायज आबादी होने की पीड़ा झेलते गांव की सीमा में ही रहने को अभिशप्त थे। पत्रकार आलोक पुराणिक कहते हैं कि ऐसे 'लोकतांत्रिक समभाव' की कल्पना करने से पहले ही तुलसीदास की प्रतिभा जवाब दे गयी होगी। तब ही तो वे इससे ज्यादा नहीं लिख पाये कि रामराज्य में शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। अब का इतिहास भविष्य में जब कभी लिखा जाएगा, तब इस बात पर बहस की संभावना बराबर बनी रहेगी कि बीसवीं सदी के आखिर में इंसान और जानवरों के एक ही जोहड़ से पानी पीने के सवाल से लोकतांत्रिक मूल्य किस तरह जुड़े हुए थे ?

बहती नदी, जायज बनती आबादी...

आज इन बांधों के कारण **जहाजवाली नदी** में साल भर पानी रहता है। ये गांव हालांकि आज भी सरकार की नजर में नाजायज ही हैं, फिर भी गांव वालों में आज संगठन से उपजा हुआ आत्मविश्वास है। उनका यही आत्मविश्वास उन्हें सरकारी नजरिये को निरर्थक सिद्ध कर देने की सक्षमता देता है।

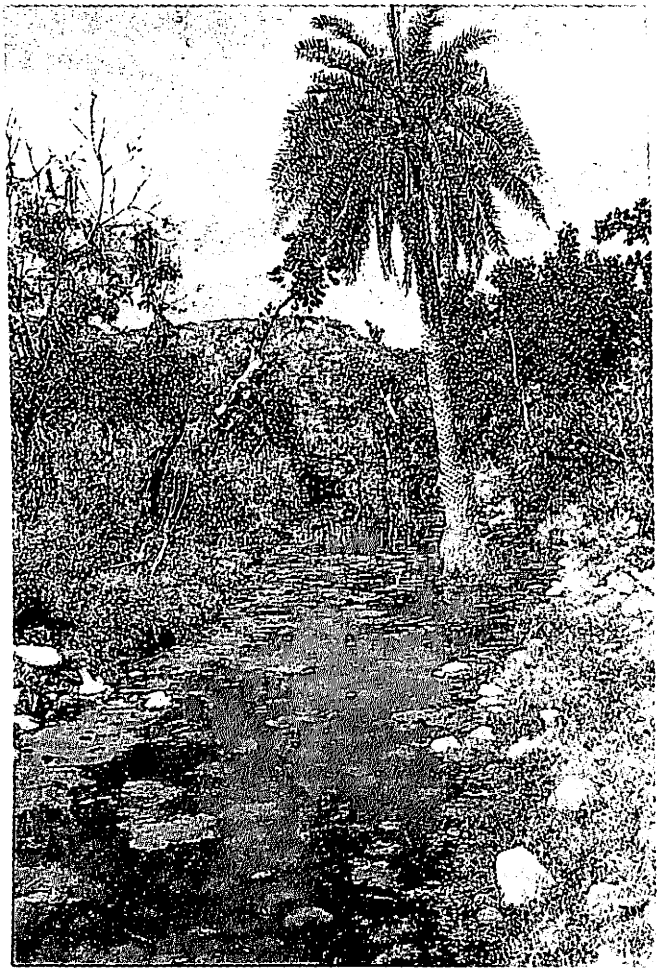

जहाज के जंगल से बहती नदी

पहले नदी-पानी के अभाव में सरिस्का के इन गांवों में एक तरह का पथरीला सन्नाटा दिखता था। गांव से बाहर चारों ओर बिखरी होती थीं मवेशियों की लाशें और उनके अस्थि-पंजर। लोग बताते हैं गिद्ध उन लाशों पर बैठे तो होते थे, पर खा नहीं रहे होते थे। लगता था कि लाशें इतनी ज्यादा हो गयी हैं कि इस महाभोज को खाने की हिम्मत गिद्ध समुदाय में भी नहीं है। ऐसा था वह दौर और ऐसे थे पानी के चुक जाने के बाद के हालात। आज गांव के गांव सरसब्ज दिखते

हैं, गुलजार दिखते हैं। आइए, ऐसे ही एक गांव देवरी चलें, जो **जहाजवाली नदी** का उद्गम स्थल है।

कथा देवरी गांव की...

सरिस्का के घने जंगल वाले इस क्षेत्र में महाराजा बख्तावर सिंह ने एक मंदिर बनवाया था। तभी से इस क्षेत्र का नाम देवरी पड़ा। देवरी गांव में आज अनाज की पैदावार दिन-दूनी, रात चौगुनी हो गयी है। कुओं का जलस्तर इतना बढ़ गया है कि देखकर आखें चमक उठती हैं। नदी की अविरल धारा के साथ

देवरी गांव में आई समृद्धि के प्रतीक वे पशु जिन पर लदकर तरह-तरह का सामान गांव में आता है

देवरी गांव के लोगों का जीवन भी लयबद्ध हो गया है। ध्रुपद के एक अनोखे राग की तरह यहां सुबह होती है, और लोग प्यार और संगठन का गीत गाते हुए अपने-अपने काम पर जाते हैं। यह **जहाजवाली नदी** से उपजी हुई आस्था ही है, जिसने देवरी गांव को पूरी तरह बदल दिया है। अमावस्या के दिन सारा गांव इकट्ठा होकर गांव के आगे बढ़ने की बात पर विचार-विमर्श करता है।

जब यहां पानी नहीं था, तो यही गांव एकदम मृतप्राय था। कुएं सब के सब सूख चुके थे। गर्मी के दिनों में इनकी गाय-भैंसें गांव छोड़कर बाहर चली जाती थीं। गांव में जो महिलाएं बच जातीं, उनके लिए 15 सेर गेहूं सिर पर या

गधे पर लादकर लाना ही एक बड़ा मुश्किल काम था। ऊपर से जंगलात के लोगों का डर भी पीछा नहीं छोड़ता था। लगभग नौ साल पहले देवरी में जंगलात विभाग के चार गार्ड रहते थे। ये लोग अय्याश तबीयत के थे। शराब और मौज मस्ती के लिए गांव वालों को बहला-फुसलाकर, उन पर दबाव डालकर जंगल के पेड़ उनसे कटवाते थे। पांच सौ रुपये से एक हजार रुपये तक हर आने वाले छह महीने के हिसाब से एक-एक परिवार से वसूलते थे। यह साफ तौर पर रिश्वत थी, जो खुलेआम ली जाती थी। यह रिश्वत रुपये तक ही सीमित नहीं थी। हरेक घर से साल में दो बार आधा किलो देशी घी वसूला जाता था। जगह-जगह रास्ते रोककर ग्रामीणों से चौथ भी वसूली जाती थी। गांव वालों को चोरी-छिपे सिर पर रखकर अनाज घर पहुंचाना पड़ता था। इन हालात के चलते दुकानदारों का कर्ज बढ़ जाना स्वाभाविक था। वे कर्ज अदायगी की नाउम्मीदी के दौर में कब तक उधार देते रह सकते थे। इसलिए खाने के लिए अनाज की समस्या भी उनके लिए विकराल रूप धारण कर चुकी थी।

वह दौर इतना त्रासद था कि भूख और प्यास के कारण तरह-तरह की बीमारियां गांव में अपनी जगह बनाने लग गयी थीं। डॉक्टर या वैद्य इस गांव में पहुंच नहीं सकते थे, क्योंकि जिस आबादी को नाजायज मान लिया जाता है, वहां सरकार सुविधाएं कैसे पहुंचा सकती है ! यहां शिशुओं की मृत्यु दर 75 फीसदी थी। पचास फीसदी बच्चे रतौंधी जैसी बीमारियों से पीड़ित हो गये थे। चारों तरफ पहाड़ियों से घिरा देवरी गांव बिल्कुल वीरान लगता था। नंगे पहाड़ व सूखे पेड़ों के ठूंठ गांव को कोसते थे। और गांव वाले अपनी किस्मत को। देवरी वासी बब्बू मीणा व प्रताप गुर्जर बताते हैं कि हमें खुद ही अपने गांव में रहने से डरने लगने लगा था। गांव में कहीं कोई धर्म-धीरा नहीं रह गया था। आपस में एक-दूसरे की मदद करने की श्रद्धा भी समाप्त-सी हो गयी थी। अन्याय से लड़ने की ताकत का तो जैसे श्राद्ध कर दिया था लोगों ने। गुलामों की तरह जंगलात विभागवालों की मार से त्रस्त यह गांव पूरी तरह बीमार हो चुका था।

ये वे दिन थे, जब जंगलात विभाग का जंगल राज उत्पीड़न, शोषण और आंतक की अपनी सबसे खौफनाक शक्ल में मौजूद था। ऊपर से सूखे का चौतरफा पसरा आलम। नब्बे के उस दशक में सूखे ने तो यों पूरे राजस्थान में ही तबाही मचा दी थी, पर सरिस्का के **कोर** क्षेत्र के इस गांव में प्रशासन और

जंगलात विभाग वालों की बेरुखी और उपेक्षा से यह और दर्दनाक साबित हो रही थी। देवरी के भंभू को जब अपने समधी क्रास्का के गणपत से तरुण भारत संघ के कामकाज की जानकारी मिली, तो उसे सहज ही विश्वास नहीं हुआ। उसे यह समझने में दिक्कत हुई कि किसी संस्था या कुछ आदमियों के प्रयास से ऐसी बदहाली की स्थिति को पलटा भी जा सकता है। पर उसके समधी का आग्रह था और वह उन्हें नाराज भी नहीं करना चाहते थे। इसलिए वे दोनों भीकमपुरा के लिए रवाना हो गये। यहां तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं से क्षेत्र की समस्या पर व्यापक बातचीत हुई। इससे उनकी कुछ हिम्मत तो बढ़ी, पर पूरी तरह से दिलजमई नहीं हो पायी। कुछ दिन बाद जब संस्था के कार्यकर्ता गोवर्धन शर्मा देवरी गांव जा पहुंचे तो बातचीत के दौरान गांव वालों की उम्मीद बढ़ी। जिसे वे असंभव समझ रहे थे, वह कुछ हद तक संभव दिखने लगा। फिर यह आने-जाने का सिलसिला लगातार चलता रहा। और एक दिन ऐसा आया कि तरुण भारत संघ के सहयोग से ग्रामसभा गठित करने की बात गांव वालों के मन पर असर कर गयी। गांव वालों ने अपनी ग्रामसभा बना ली।

सामूहिक सोच और साझे काम की दिशा में यह पहला पर बहुत महत्त्वपूर्ण कदम था। **सुख-दुख में साझेदार होने की प्रक्रिया जब शुरू होती है, तो सुख बढ़ता सा और दुख कम होता सा प्रतीत होता है।** समूह हिम्मत भी देता है। अकेले में जो ताकतें अजेय दिखती हैं, समूह की शक्ति उन्हें पराजित भी कर सकती है। पर यह समझ समूहबद्ध और संगठित हो जाने के बाद ही आती है। ग्रामसभा बनने के बाद और लगातार चर्चा करते रहने के बाद गांव वालों ने जंगलात विभाग के कारिंदों की कार्रवाइयों का विरोध करने का मन बनाया। उनसे लोहा लेने का मन बनाया। मन बना तो उनसे जूझने की गांव वालों की तैयारी दिखाई पड़ने लगी। जंगलात वालों के मन में तो वैसे ही चोर छिपा बैठा था। अब तक वे अकेले-दुकेले लोगों को पहले पेड़ काटने को ललचाते-फुसलाते थे और फिर रिश्वत देने को डराते-धमकाते थे। गांव वाले जैसे-जैसे संगठित होते गये, जंगलात वालों को यह लगने लगा कि अब **उनकी दाल गल नहीं सकेगी। और जब गल ही नहीं सकेगी, तो पकेगी कैसे!** गांव वालों ने उनसे बातचीत बंद कर दी। दुआ-सलाम भी बंद कर दी। यहां तक कि मांगने पर पीने के पानी पर भी ग्रामसभा ने कड़ी पाबंदी लगा दी। इस तरह जंगलात कर्मचारियों का देवरी गांव से पत्ता ही कट गया। वे गांव से चले गये। तब गांव

वालों ने मिल बैठकर फैसला किया कि यह जंगल हमारा है। इसकी रक्षा की जिम्मेदारी हम पर है। इसके लिए देवरी की ग्रामसभा ने वे सारे उपाय किये, जो जंगल की सुरक्षा के लिए सबसे कारगर हो सकते थे। अगला फैसला वर्षा के जल की एक-एक बूंद को रोकने का हुआ।

देवरी में सात किलोमीटर लंबे जलागम में तीन मध्यम बांध, दो तटबंध तथा छह जोहड़, लगभग पचास नाला बंडिंग बनायी गयी तथा कई मेड़बंदियां की गयीं। अगली ही बारिश में इसका फायदा सामने आ गया। आज गांव के सभी 18 कुओं में दस फुट से चालीस फुट पानी है। अब यह पानी जेठ के महीने के सबसे गर्म दिनों में भी चमकता-झिलमिलाता रहता है। 1995 के साल में

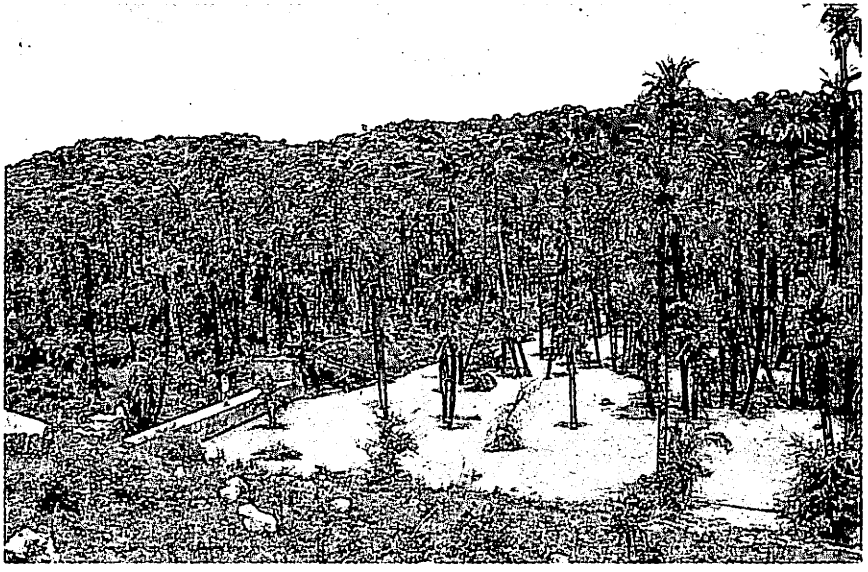

देवरी का बलखण्डा बांध

देवरी में दो हजार क्विंटल अनाज पैदा हुआ। जबकि बारिश के पानी के रुकने से पहले बहुत अच्छी बारिश होने पर भी 1978 में कुल सात सौ मन अनाज पैदा हुआ था। 1986 से लेकर 1989 तक तो खाने के लिए एक दाना तक भी पैदा नहीं होता था। कुओं के सूख जाने के कारण लोग चरस चलाने और सिंचाई करने जैसी अपनी आदत लगभग भूल-से गये थे। लेकिन आज चारों ओर पानी की बहार देखकर देवरीवासी **बब्बू मीणा, परता गुर्जर** कहते हैं कि ऐसा लगता है जैसे दूध देवता हमसे नाराज होकर हमारा गांव छोड़कर चले गये थे, अब वापस लौट आये हैं। यह कहावत की बात ही नहीं है, एकदम असलियत है कि घर-घर

में अब दूध-छाछ की नदियां बहने लगी हैं। घी के बिलौने (मटके) भरे रहते हैं। अब इनके खरीदने वाले गांव में ही पहुंच जाते हैं। आज हम समृद्ध हैं, पर बुरे दिनों के अपने अनुभव को हम भूल नहीं पाये हैं। इसलिए हम सबकी यह कोशिश रहती है कि एक-दूसरे की जरूरतों का पता रखते रहें।

अपनी जरूरतें पूरा कर लेने के साथ-साथ पड़ोसियों की जरूरतों का भी ध्यान रखने का भाव, दरअसल गांव वालों का वह सामलाती संस्कार है, जो कठिनाई के दिनों में उनसे कहीं खो गया था। ये संस्कार उन हालात में कोई भी गांव खो सकता है, जिन हालात से देवरी गांव गुजरा था। देवरी में अब समृद्धि लौट आयी है। जंगल अब हरा-भरा दिखता है। ये हरे जंगल आज जंगलात विभाग की आंख की किरकिरी बने हुए हैं। गांव वालों ने एक नया नारा गढ़ा है, **जंगलात विभाग से जंगल बचाओ**। जंगलात विभाग को यह नारा थोथा नहीं दिखता। यही वजह है कि वे अपने खोल से बाहर आने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे।

बब्बू मीणा और **परता गुर्जर** बताते हैं कि आज के दिन **जहाजवाली नदी** पूरे साल बहने लगी है। यह हमारे गांव के संगठन और मेहनत के बल पर संभव हुआ है। गांव में हालात बदले हैं। इन्हीं सबकी बदौलत बदले हैं। लेकिन इस बदलाव के पीछे जरूर कोई अवतारी ताकत है, जो दिखती नहीं है। अब ऐसा बदलाव हमारे गांव में ही नहीं, आसपास के सैकड़ों गांवों में हो रहा है। दूसरे गांवों के कामों को देखकर इस तरह के काम में हम सबको ताकत मिलती है। हमारे काम को देखने के लिए दूर-दूर से गांववासी आने लगे हैं। इस तरह के कामों से हमारे अन्य दूर-दराज गांवों के दुख भी दूर होंगे।

राजेन्द्र सिंह अपनी एक पुस्तिका **लोक परंपरा से मिला रास्ता** में देवरी में आये हुए बदलाव का जिक्र करते हुए कहते हैं, अब देवरी गांव में वास्तव में देवों का वास हो गया है। यह अपने नाम को सार्थक कर रहा है। गांव वाले कहते हैं, 'पहले हमें कभी समझ नहीं आया था कि हमारे गांव का नाम देवरी क्यों पड़ा। अब समझ में आ गया है। चारों तरफ सघन हरियाली, बाघ, बकरी तथा आदमी साथ-साथ इस भूमि पर रह रहे हैं। यह सब देव भूमि या तपोभूमि पर ही संभव है। इसलिए पुराने जमाने में पंहले भी ऐसी ही सुख समृद्धि यहां रही होगी। तभी तो हमारे पुरखों ने इसे 'देवरी' नाम दिया होगा।'

ये सारे घटनाक्रम इस बात को साफ करते हैं कि नदियां एक नाजायज आबादी को भी जायज सिद्ध कर देती हैं। पानी हो, तो अपने अस्तित्व की लड़ाई लोग स्वयं लड़ सकते हैं। यह बात हमें देवरी बताता है। फिर से **जी उठी जहाजवाली नदी** बताती है।

गाथा गुर्जरों की लोसल की...

एक गांव है गुर्जरों की लोसल, जहां से होकर भी गुजरती है **जहाजवाली नदी**। 74 गुर्जर परिवारों का बसेरा यह गांव भी अरावली की पर्वत श्रृंखला के बीच सरिस्का की सीमा में ही पड़ता है। इस गांव में बदहाली के बादल सालों-साल मंडराते रहे। लेकिन जब बदलने लगा यह गांव, तो ऐसा बदला कि अलवर जिलाधीश तक को कहना पड़ा, **इस देश में सब गांव गुर्जरों की लोसल की तरह हो जायें, तो सरकार के बनाये भारी-भरकम ढांचे की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाये। गांव के लोग ही अपना सही विकास कर सकते हैं।**

गुर्जरों की लोसल की आबादी है 527। पेशा, अब मुख्यतः खेती और पशुपालन। पहले जब पानी की घोर किल्लत थी, तो सिर्फ और सिर्फ पशुपालन। गर्मी के दिनों में गांव सूना पड़ जाता था। लोग गांव छोड़कर पानी, चारा व काम की तलाश में बाहर चले जाते थे। **जहाजवाली नदी** के बहने से पहले गांव के 22 कुएं सूखे पड़े थे। गुर्जरों की लोसल में आकर गांव वालों क़ी चीजें उठवा ले जाना, जंगल कटवाकर ले जाना, गांव वालों के बीच भय फैलाना और उनमें फूट डालना, यही उन लोगों का काम था। तब गुर्जरों की लोसल में सामलाती का सबब महज मृत्यु के समय ही इकट्ठा होना था। लोग एक साथ अपनी तरक्की पर विचार-विमर्श के लिए कभी इकट्ठा नहीं होते थे।

इन तमाम विकट स्थितियों के बीच गुर्जरों की लोसल त्रासदी की एंक मोटी परत से ढंकता चला जा रहा था। इससे थोड़ी दूर पर ही दो गांव समृद्धि की अपनी यात्रा शुरू कर चुके थे। ये दो गांव थे गोपालपुरा तथा मांडलवास। इन दोनों गांवों की समृद्धि की दास्तान गुर्जरों की लोसल तक पहुंची, तो वहां के लोग भी सजग हुए। उन्होंने अपने बीच अपनी बदहाली से निबटने की तैयारी शुरू कर दी। गोपालपुरा और मांडलवास की तरह। लोग **तरुण भारत संघ** के पास आये, जहां कार्यकर्ताओं ने उनकी पूरी बात सुनी। कार्यकर्ताओं और गुर्जरों की लोसल के लोगों के बीच बातचीत के कई दौर चले। अंततः

गुर्जरों की लोसल में सूखे की चर्चा करते हुए ग्रामवासी

पानी प्रकट करने की योजना पर काम शुरू हुआ। मूल समस्या के रूप में पानी का अभाव सामने था। पहले का एक तालाब पूरी तरह सूख चुका था, जो सिंचाई, पशुओं के पीने के पानी और भूमिगत जल के पुनर्सिंचन के काम में आता था। सबसे पहले उसकी मरम्मत हुई।

श्रमदान करते लोग, 1987

आज इस गांव में पांच जोहड़ हैं, जो लोगों ने स्वयं अपने संगठन से बनाये हैं। जोहड़ निर्माण के साल भर बाद ही प्रभाव आने लगा। कुओं का जलस्तर अचानक बहुत बढ़ गया। भूमि उपयोग के तरीकों में आमूलचूल बदलाव आ गया। जोहड़ निर्माण से पहले 40 हैक्टेयर भूमि असिंचित, 90 हैक्टेयर कृषि योग्य व 184 हैक्टेयर बंजर भूमि थी। आज इस गांव में 60 हैक्टेयर सिंचित, 90 हैक्टेयर कृषि योग्य, 34 हैक्टेयर अकृषिकृत एवं 30 हैक्टेयर चारागाह भूमि हो गयी है। जोहड़ों के संयुक्त निर्माण और प्रबंधन से लौटती हुई खुशियां देखकर लोगों की तंद्रा भंग हुई और उन्होंने अपने दूसरे प्राकृतिक संसाधनों के भी प्रबंधन का निश्चय किया। वृक्षारोपण और पर्यावरण संरक्षण की चेतना व सजगता के कारण ही आज इस गांव में हरियाली अपनी छटा बिखेरती नजर आती है। 1986 से अब तक हजारों की संख्या में पेड़ों को गांव वालों ने बचाया है। बचाया हुआ जंगल 104 हैक्टेयर भूमि में फैला हुआ है। इसकी खूबसूरती देखते ही बनती है।

इन तमाम विकास कार्यों के साथ गुर्जरों की लोसल में पशुधन में भी भारी वृद्धि हुई। उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है कि पहले भैंसों की संख्या तीन सौ थी। 1995 में बढ़कर 440 हो गयी। गाय 350 से 430 हो गयीं। दूध का उत्पादन सीधे डेढ़ गुना हो गया। पानी के अभाव में बकरी जैसे छोटे जानवरों का ही सहारा था। गांव में पानी का जीवन शुरू होने के बाद बकरियों की उतनी जरूरत नहीं रह गयी। अन्य मवेशियों में बढ़ोत्तरी के साथ बकरियों की संख्या घट गयी। इससे गांव वालों की आय तो बढ़ी ही, साथ ही समाज सुधार के काम भी शुरू हुए। बाल-विवाह, दहेज प्रथा, नशाबंदी, जनसंख्या वृद्धि, बीमारी और अशिक्षा आदि कई समस्याओं पर इस गांव ने फतह हासिल की है।

ऐसे बना गांव का संगठन...

गुर्जरों की लोसल में काम करते थे **रामदयाल गुर्जर**। ये राडा गांव के रहने वाले थे। देवरी में हुए काम को देखकर कार्यकर्ता बने थे। इन्होंने लोसल के **श्रवण शर्मा** के साथ मिलकर काम शुरू किया था। साथ ही अपने गांव में भी काम आरंभ किया। सबसे पहले गांव को फिर से संगठित किया और बांध बनाया था। इसके बनने से बांध के नीचे के सभी कुओं में पानी हो गया। इस बांध के बनने से पहले यहां एक भी कुएं में पानी नहीं था। लोगों ने खेती करना छोड़ दिया था। बस पेड़ काटकर पशुओं का पेट भरते थे। और जब जंगल नहीं रहा, तो पशुओं को लेकर बाहर जाने लगे थे। लेकिन पानी

के आते ही लोगों के सोचने के ढंग में तब्दीली शुरू हुई। इस तब्दीली को इस रूप में देखा समझा जा सकता है कि समूह की ताकत को पहचाना गया। लोग हालात से अकेले-अकेले लड़ने के बजाय साथ बैठकर तय करने लगे कि हालात को कैसे बदला जाय। इनसे कैसे छुटकारा पाया जाय।

श्रीराम, बुद्धा पटेल, टुण्डाराम, रामस्वरूप, धन्नाराम आदि ने गुर्जरों की लोसल में पहल करके गांव को संगठित किया था। अब इनका कहना है कि हमारे गाँव की दशा ही बदल गई है। सब कुओं में पानी हो गया है। खेती होने लगी है। चारे व ईंधन की बहुतायत हो गई है। अन्न, घी व दूध भी खूब होने लगा है।

यही पृष्ठभूमि है यहां गांव का संगठन बनने की। महिलाओं का संगठन बनने की भी। इस संगठन ने अपना अनुशासन बना कर पेड़ों की रक्षा करने का संकल्प लिया। दिलचस्प चीज यह सामने आयी कि पेड़ों की रक्षा करनें के संकल्प को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करने का मतलब है जंगलात विभाग के सरकारी गार्डों से लड़ने के लिए तैयार रहना। सरकारी गार्डों की तो आदत बन चुकी थी पेड़ों की कटाई के बदले रिश्वत खाने की। अब वह रिश्वत बंद हो गयी है। क्योंकि जब गांव वाले पेड़ काटेंगे ही नहीं, तो रिश्वत किस बात की देंगे ! कुछ दिन तक गांव वालों और सरकारी गार्डों के बीच तनातनी की स्थिति बनी रही। आखिर में हुआ यह कि गांव के संगठन और गांव वालों की नयी प्रतिबद्धता

राडा का महिला संगठन

जहाजवाली नदी
के जलागम क्षेत्र में किये गये जल-संरक्षण कार्य
(दिसम्बर 1997 तक)

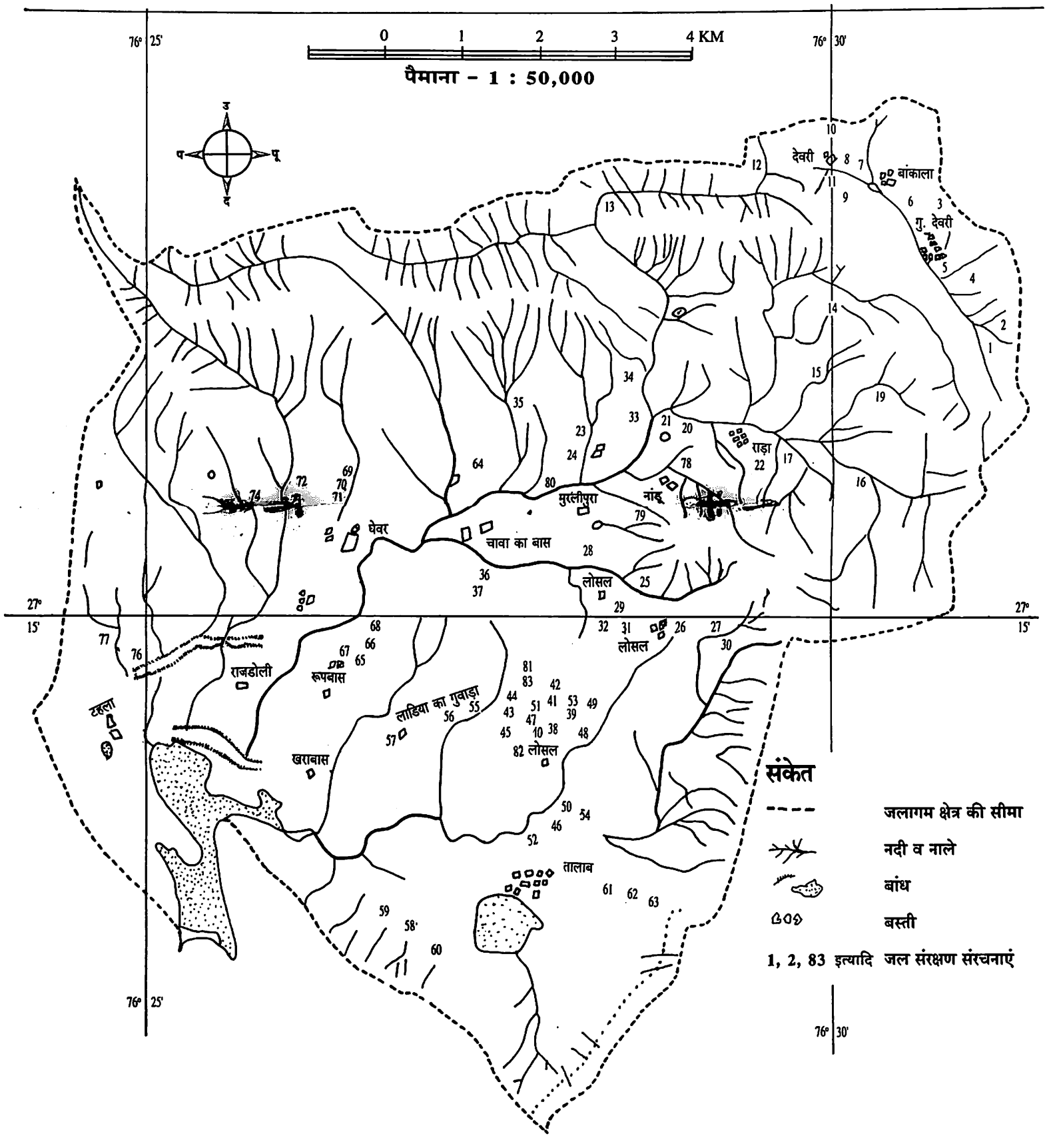

को देखकर सरकारी गार्डों ने गांव में आना ही बंद कर दिया। सरकारी गार्डों ने काफी प्रयास करके कुछ परिवारों में अपनी पकड़ बनाये रखी थी। लेकिन गांव के संगठन का दबाव इतना ज्यादा था कि गार्ड का गांव में प्रवेश अब संभव नहीं रह गया। ऐसा हुआ तो, जंगल बचने लगा।

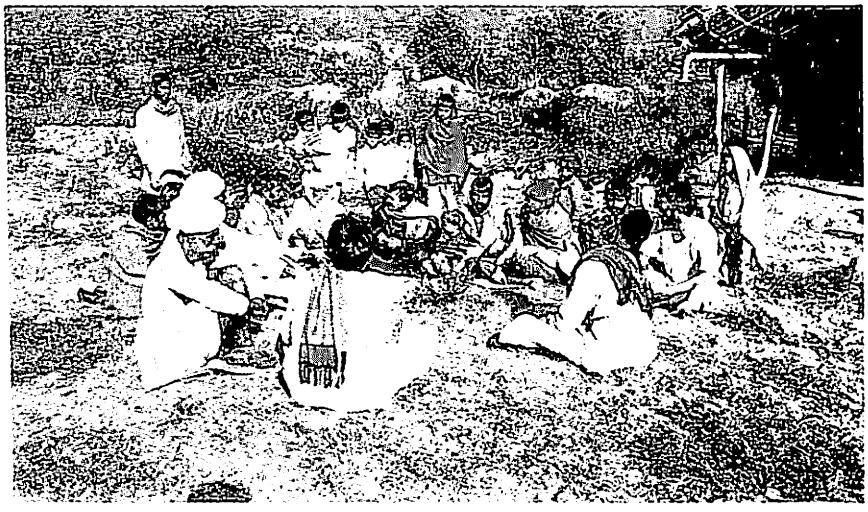

राडा की ग्राम सभा

राडा की दास्तान...

गुर्जरों की लोसल के एकदम पास है राडा गांव। यहां के **प्रभात, दयाराम, रूपनारायण, रामकिशन, जयनारायण, सुरजा राम बबरी, हरफूल** आदि ने अपने गांववासियों से देवरी में हुए बदलाव की चर्चा की। पानी का आ जाना और जंगल का बच जाना चमत्कार जैसी घटनाएं लगीं इन लोगों को। दूसरे गांवों के अनुभव भी प्रेरणा दे सकते हैं और देते हैं। यही हुआ राडा गांव के साथ। यहां गांववासियों ने अपने सक्रिय कार्यकर्ताओं की बात के महत्त्व को समझा। उनकी समझ में यह आ गया कि जंगल क्यों उजड़ा है और सही प्रबंधन नहीं होने के बिना जल क्यों बहकर चला जाता है। और वे भी गांव के जल को गांव में रोकने की बात सोचने लगे। और इसी का नतीजा था वे पांच छोटे-छोटे जोहड़, जो गांववासियों ने अपने बूते पर बनाये। निर्माण कार्य में तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने भी श्रमदान किया। गांव वालों की पहलकदमी से प्रभावित होकर तरुण भारत संघ ने सोहनावाला बड़ा बांध बनवाया। अब तो इस बांध के सहारे-सहारे एक झरना भी बहने लगा है। इस

श्रमदान से तालाब बनाते गांववासी

झरने से जगह-जगह जंगली जानवरों को पीने के लिए पानी मिलने लगा है। गांव वालों को सिंचाई की सुविधा भी हो गयी है। हर गांव की तरह यहां भी पहले तो सबसे अधिक जूझना पड़ता था पानी के लिए। सो अब नहीं है।

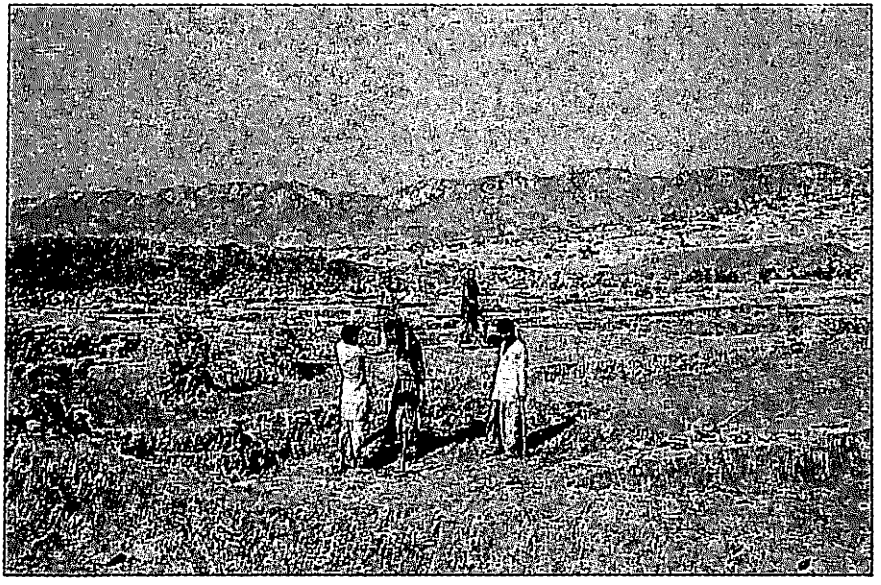

राडा गांव में सोहनावाला बांध बनाते हुए

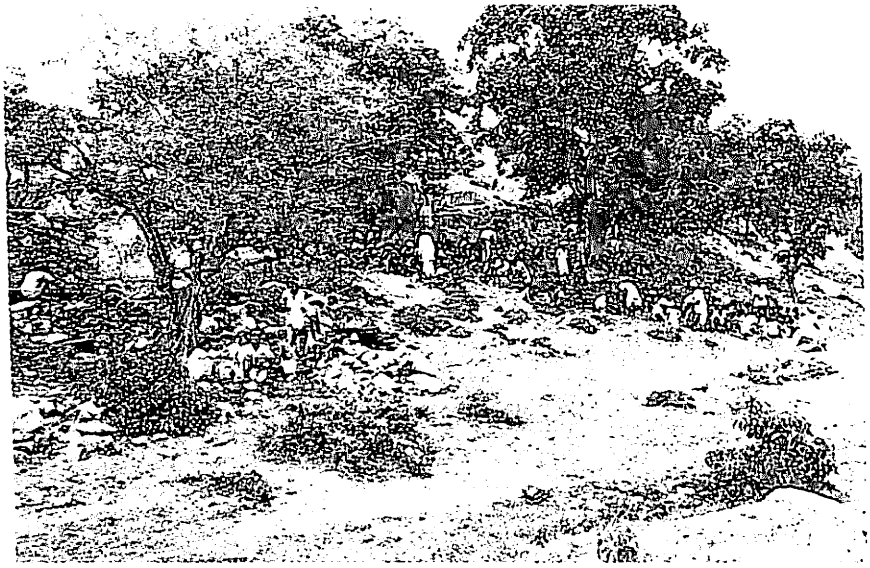

जोहड़ बनने के बाद खुशियां मनाते लोग

राडा गांववासियों के प्रयास से बांसोल में बहुत सारे पीपल के वृक्ष खड़े हो गये हैं। राडावासियों का कहना है कि बांसोल में पीपल हमारी धराड़ी थी। पीपल के सघन जंगल को सरकार ने ठेके देकर कूप करवा दिया था। हम लाचार थे। अधिक विरोध नहीं कर सकते थे। इसलिए थोड़ा हल्ला-गुल्ला करके चुप बैठ गये। हमें लगा कि सरकार और ठेकेदार से पार पाना आसान काम नहीं है। इसका बुरा असर यह हुआ कि हम अपनी धराड़ी को नहीं बचा पाये, तो हमने जंगल की तरफ से ही आंख फेर ली। **दयाराम गुर्जर** कहता है उस घटना के बाद जंगल पर से हमारा विश्वास ही उठ गया था। अब हम अपनी इस गलती पर पछताते हैं। तभी संगठन बना लिया होता, तो पूरी की पूरी धराड़ी बच जाती। गुर्जरों की लोसल से प्ररेणा पाकर हमारा सोचने का तरीका बदला। तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं से मिलकर हमारी समझ बढ़ी। अपनी लाचारी के कारण पैदा हुई जंगल के प्रति हमारी उदासीनता भी टूटी है। **प्रभात गुर्जर** का कहना है, यह जंगल तो हमारे जीवन का आधार है। इसके बिना तो हम जी ही कैसे सकते हैं। अस्सी के दशक में ये लोग जंगलों तथा पानी की कमी के कारण गर्मी में गांव छोड़ कर चले जाते थे मजबूरी में। अब चूंकि पानी मिलने लगा है, गांव छोड़कर बाहर जाने की घटनाएं रुक गयी हैं। सिर्फ सुनाने भर की चीज रह गयी है। अब तो पूरे साल इनका गुजारा आसानी से यहीं हो जाता है।

एक जमाना ऐसा था जब यहां के अधिकांश लोग खानों में मजदूरी करते थे। खानों ने इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी का बेहिसाब विनाश किया था। खान मालिकों की अमीरी चाहे दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ी हो, यहां के लोगों के आत्मसम्मान को उस विनाश-लीला ने बेहद आहत किया था। जो पहले खेती करके या पशुपालन करके अपनी मरजी के मालिक हुआ करते थे, वे मजदूर बन गये। खनन के काम ने जब पानी के काम को प्रभावित करना शुरू कर दिया, तो गांव के लोग भी सोचने पर विवश हुए। पूरे गांव ने मेहनत करके जोहड़ बनाया और उसमें जो पानी आना चाहिए था, वह रोक लिया खानों के बड़े-बड़े गड्ढों ने। और यहीं से शुरुआत हुई दोहरी लड़ाई की। जल और जंगल बचाने की लड़ाई के साथ-साथ खनन के खिलाफ लड़ाई भी जुड़ गयी। शुरू में तो कुछ लोगों को यह लगा कि खनन बंद हो गया तो मजदूर बेरोजगार हो जाएंगे। पर धीरे-धीरे उनको यह साफ समझ में आ गया कि वे मजदूर बने भी तो इसलिए थे कि जंगल कट गये थे और पानी गायब हो गया था। इस समझ से लैस होकर ही **जगदीश, दयाल, तेजाराम, मुरली, रामफूल, गोविंद सहाय** जैसे मुरलीपुरा गांव के लोगों ने जल-जंगल बचाने का काम हाथ में लिया। इसकी सफलता के लिए उन्होंने घर-घर जाकर माहौल बनाया। उस सबका ही नतीजा है कि अब अधिकतर लोग फिर से खेती/पशुपालन के काम में लग गये हैं। यहां अभी तक सरकारी स्कूल नहीं है। तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता ही यहां स्कूल चलाते हैं। बच्चों को इतना पढ़ा-लिखा देते हैं कि बाहर के स्कूलों में उन्हें प्रवेश मिल सके।

ग्राम नांडू के **राधेश्याम गुप्ता, रामकिशन ग्राम सेवक, कन्हैया पुजारी** तथा **लक्ष्मीनारायण** आदि ने गांव को संगठित कर श्रमदान जुटाने में नेतृत्व किया था। अब ये अपने गंवई दस्तूर बना कर जंगल बचाने के साथ-साथ जंगल-जल संरक्षण का कार्य कर रहे हैं। इस गांव के सभी कुओं में पर्याप्त जल हो गया है। खेती अच्छी होने लगी है।

गाथा राडी की...

ग्राम राडी में **रामकरण, लल्लूराम** आदि लोगों ने जोहड़ बनाये। जंगल बचाये। नायाला के लोग भी जंगल बचाने का अच्छा प्रयास कर रहे हैं। चावा का बास में भयंकर अकाल के समय जोहड़ बना था। इस काम को **भगवान सहाय, मुकेश, महेश** तथा **लक्ष्मण** आदि लोगों ने किया था। इसका प्रभाव अद्‌भुत है। इसमें पूरे साल पानी रहता है। कई गांवों के जानवर

जोहड़ बनने से पहले राडा गांव की महिला दूर से पानी लाते हुए

इसी में पानी पीते हैं। इस जोहड़ का **जहाजवाली नदी** को सजल बनाने में सीधा योगदान नहीं रहा है। फिर भी इसने नदी पर से पशुओं का दबाव कम करने में मदद जरूरी की है। यह जोहड़ नहीं होता तो सैकड़ों गाय-भैंसों के पेयजल का दबाव नदी पर बढ़ जाता। ब्राह्मणों की लोसल में **कैलाश शर्मा, भगवान सहाय, रामकृष्ण, अनंत राम** तथा तलाब गांव में **मूलचंद मिश्र, श्रवण बलाई** की अगुवाई में भी जल बचाने के लिए बहुत से जोहड़ बने हैं। इस काम में **जगदीश शर्मा वकील** तथा **भगवान सहाय चौबे जी** का भी अच्छा सहयोग रहा है। यह गांव जोहड़ बनाने में आगे रहा है। यूं तो तलाब गांव दो बड़े तालाबों के किनारे बसा है, फिर भी यहां पिछले वर्षों में पानी की कमी पड़ गयी थी। तब यहां के लोगों ने तरुण भारत संघ के साथ मिलकर कुछ नये जोहड़-बांध बनाये थे।

लाड़िया का गुवाड़ा में **मदन शर्मा, पूर्व सरपंच** ने भी तरुण भारत संघ के साथ मिलकर एक एनीकट का निर्माण किया। इसके बनने से इसके नीचे के लगभग 20 कुएं सजल हो गये। खेती के लिए नयी जमीन भी मिल गयी।

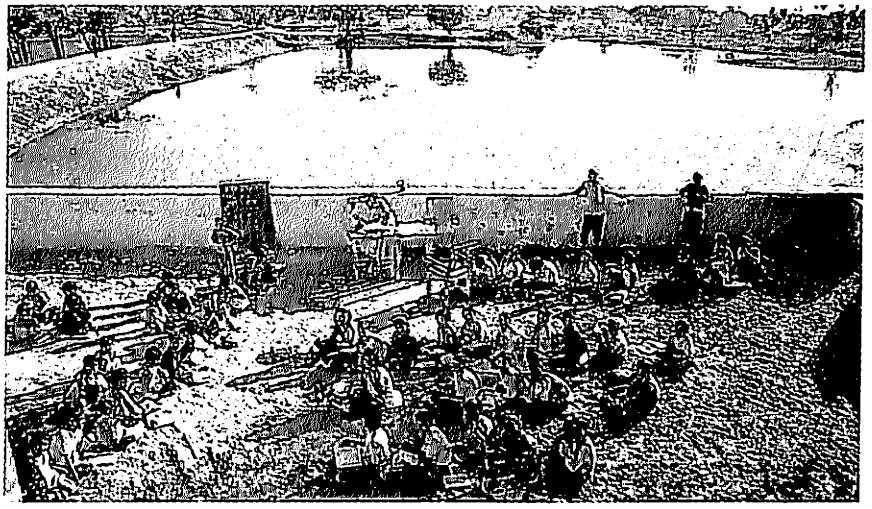

जोहड़ के किनारे चलता स्कूल

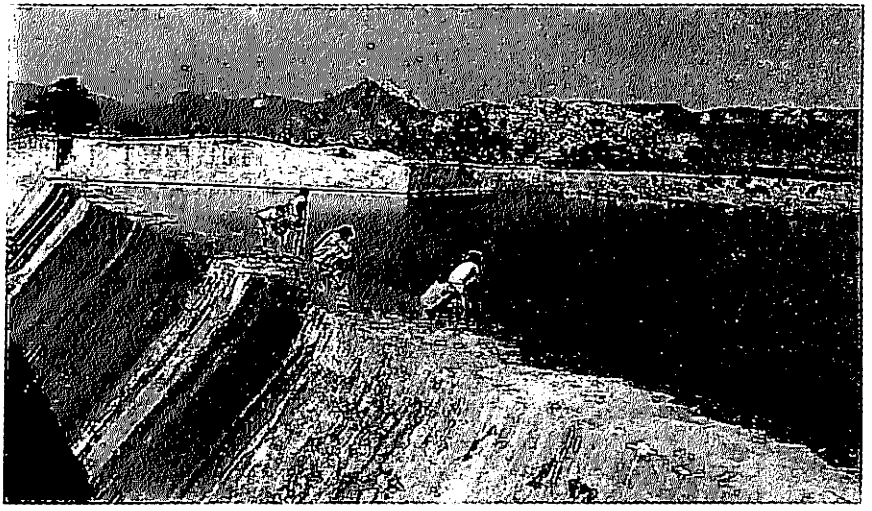

रूपवास का एनीकट

रूपवास के लोगों ने तो और भी बड़ा काम किया। यह गांव लंबे समय से पानी की तंगी भुगत रहा था। 1990 में संगठित होकर इन्होंने इस जहाजवाली नदी पर एक एनीकट का निर्माण कर लिया। इसके बनने से सैकड़ों परिवारों की जिंदगी में रौनक आ गयी। जो कुएं पहले सूखे थे, वे सजल हो गये। इससे पानी होता देख कर अब बहुत से नये कुएं भी इसके नीचे निर्मित हुए हैं। यहां के लोगों ने इस एनीकट को बनाने में प्रति परिवार एक सौ दिन से भी अधिक श्रमदान किया है।

इस काम के बदले तरुण भारत संघ से उन्हें किसी तरह की कोई मजदूरी नहीं मिली। बल्कि विशुद्ध रूप से अपने श्रम का दान किया है। **चिरंजीलाल, रामेश्वर गोपाल, मूलचंद** आदि ने इस काम का बहुत अच्छी प्रकार संयोजन किया था। **रामजीलाल घेवरवासी** ने भी रूपवास के बांध में बहुत ही आर्थिक एवं श्रमदान का सहयोग किया। गरमी के दिनों में आसपास के ग्वाले इस स्थान पर इकट्ठे होते हैं। आसपास के लोग यहां स्नान करने आते हैं। रूपवास का यह एनीकट इस पूरे क्षेत्र में चर्चा का विषय बन गया है। एक छोटे से गांव ने बड़ा काम कर दिखाया है। अब यह गांव बड़ा गांव, इज्जत का गांव बन गया है। गुवाड़ा राजडोली के लोगों ने जंगल के पास श्रमदान से जोहड़ का निर्माण कराया। इस काम में **नानगराम लोहार** का बहुत ही सक्रिय योगदान रहा है। गुर्जर भी इस काम में पीछे नहीं रहे। **रामकरण, रामधन, लीलाराम गुर्जर** ने इस कार्य का संयोजन किया। इनकी देखरेख में ही यह काम पूरा हुआ।

ऐसे रुका बाघ का शिकार...

घेवर गांव में चार जोहड़ बने थे। इनको बनाने में **देवीसहाय शर्मा, शुगन सिंह, अर्जुनसिंह, मनोहर शर्मा, रामजीलाल शर्मा, चिरंजीलाल, भगवान सहाय, गोविंद सहाय, रामदयाल, राम अवतार गुप्ता, तानाराम मीणा** तथा **मिश्रीलाल बलाई** ने अगुवाई की थी। यही घेवर गांव पहले जंगल का सबसे बड़ा विरोधी था। इन्होंने अभयारण्य की सीमा को अपने गांव से दूर पहुंचाने हेतु बहुत संघर्ष किया था। नामी बाघ शिकारी **सरदारसिंह बावरिया** यहीं रहने लगा था। गांव के लोगों की सहमति से ही उसने जंगलात विभाग के साथ मिलकर 15 बाघ मारे थे। यह बात सबसे पहले उस चर्चा में उजागर हुई थी जिसे दूरदर्शन पर **नलिनीसिंह** ने आयोजित किया था। लेकिन घेवरवासियों को यह बात बहुत देर से समझ में आयी कि बाघ तो हमारा मित्र है। यह हमारी खेती तथा जंगल का दोस्त है। इसको बचाने में ही हमारी भलाई है। यह समझ आने पर घेवरवासियों ने **बावरिया** को गांव में आने से मना कर दिया। यही नहीं उन्होंने जंगली जानवरों के पीने के पानी के लिए चार जोहड़ भी बना दिये। अब जंगली जानवर इसमें मौज से पानी पीते हैं। इन जोहड़ों की टूट-फूट की मरम्मत स्वयं ग्रामवासी ही करते हैं। **देवी सहाय शर्मा** तथा **रामजी लाल शर्मा** ने इस काम की अगुवाई की थी। पूरे गांव से श्रमदान जुटाने तक पैसा अपनी जेब से दिया था। फिर काम का पूरा हिसाब भी गांव को बताया। धर्मप्राण **श्री शैतानसिंह** जी

ने अपने जीवन भर की बचत से एक जोहड़ का निर्माण जंगली जीवों के लिए किया था। वे लोग, जो कुछ वर्ष पहले तक जंगलों व जंगली जीवों के दुश्मन बन गये थे, उनके मन में प्रकृति प्रेम अचानक ही पैदा नहीं हो गया। यह सब एक लंबी और आपसी विश्वास यात्रा का ही परिणाम है। घेवरवासियों को जब यह भरोसा होने लगा कि यह जंगल हमारा है और हमें ही इसका प्रबंधन करना चाहिए, तो लोग प्रबंधन के काम में जुट गये। जल-जंगल के लोक प्रबंधन से ही संभव हुआ **जहाजवाली नदी** का फिर से जी उठना। साथ ही उसके जलागम क्षेत्र के जंगल में बाघ का बने रहने का मन बन जाना।

लोक प्रबंधन का काम मौजूदा व्यवस्था से टकराये बिना नहीं हो सकता। जहां लोग टकराव और मुठभेड़ के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से तैयर नहीं होते, वहां व्यवस्था के कुचक्रों को चुनौती भी नहीं मिलती। और वैसे भी यह व्यवस्था इतनी निरंकुश, क्रूर और मनुष्य विरोधी हो गयी है कि नदियों के सूख जाने के कारणों की खोज करना या उन्हें फिर से सजल करने के प्रयत्न करना उसकी कार्यसूची में है ही नहीं। भारत सरकार बाघ संरक्षण के नाम पर अरबों रुपया खर्च कर रही है, फिर भी बाघ के भविष्य पर प्रश्नचिह्न गहरा होता जा रहा है। जलागम विकास के खाते अरबों रुपये का खर्च दिखाया जा रहा है फिर भी धरती के भीतर का पानी नीचे, और नीचे जा रहा है लगातार। **राजस्थान जैसे राज्य में तो यह और भी अधिक चिंता की बात इसलिए भी है कि इसके हिस्से पूरे देश के जल संसाधन का सिर्फ एक प्रतिशत आया है।** भू-कटाव बढ़ता ही जा रहा है। **यह सिर्फ धन से नहीं रुक सकता, बल से भी नहीं। इसे लोगों के संवेदनशील मन, बुद्धि और लोकविज्ञान से ही रोका जा सकता है।** यह काम सही **दृष्टि, संवेदना** और **धीरज**, तीनों की मांग करता है। इनमें से एक भी गायब हो जाये, तो यह काम नहीं हो सकता। तरुण भारत संघ के मंत्री **राजेन्द्र सिंह** का कहना है : जब हमने काम शुरू किया था, तो यह कतई अंदाज नहीं था कि हम इतना बड़ा काम समाज के साथ मिलकर कर पाएंगे। पर आपसी समझ और नि:स्वार्थ भाव से किये गये काम का नतीजा सबके सामने है। समाज ने हम पर भरोसा किया। उनके विश्वास ने हमारे मन को जोड़ दिया और हम सभी कार्यकर्ताओं में नयी ऊर्जा का संचार कर दिया। जल व जंगल संरक्षण के बड़े काम की जो प्रक्रिया शुरू हो गयी है, हमें विश्वास है कि वह न केवल जारी रहेगी बल्कि नयी बुलंदियों को छू पायेगी।

तरुण भारत संघ की कार्य पद्धति...

यूं तो कोई भी संस्था लक्ष्यों पर दृष्टि रख के ही काम करती है और इस लिहाज से तरुण भारत संघ भी कोई अपवाद नहीं है। फिर भी इस संस्था के कामकाज की तुलना यदि अन्य संस्थाओं के कामकाज के साथ की जाये, तो एक बुनियादी महत्त्व का फर्क उभर कर सामने आ जाता है। बदलाव अथवा लक्ष्य प्राप्ति का मंत्रोच्चार करते रहने पर कई बार **प्रक्रिया** गौण हो जाती है। यहां बहस इस बात पर नहीं है कि **प्रक्रिया** अधिक महत्त्वपूर्ण है या **लक्ष्य**। सच तो यह है कि ये दोनों एक-दूसरे से गहरे जुड़े हैं। एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। पर तरुण भारत संघ द्वारा **प्रक्रिया** पर अधिक जोर दिये जाने का एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि **निर्णय** से लेकर **क्रियान्वयन** तक **समूची प्रक्रिया** में भागीदारी सुनिश्चित हो जाती है। इससे बच पाना न तो संभव है, न उसे अनदेखा अथवा क्षमा ही किया जा सकता है। **इसका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि सत्ता और प्रशासन की उदासीनता की मार झेल रहे लोगों तक को यह लगने लगता है कि वे निकम्मे और नाकारा नहीं हैं तथा अपने बूते पर काफी कुछ कर सकते हैं।** यह एक तरह से मानवीय गरिमा का भाव है, जो कि शोषण, दमन और उत्पीड़न के शिकार लोगों के मन में जब तक पैदा नहीं होगा, उनकी पहलकदमी और कल्पनाशीलता दोनों ही पंगु बनी रहेंगी। यह बेशक सही हो कि गांव वालों को जब तक लाभ दिखने नहीं लगेंगे, तब तक वे न तो कोई प्रस्ताव लेकर आएंगे और न अपने श्रमदान/अंशदान की ही गारंटी देंगे। पर इसमें गलत भी क्या है ? निरंतर पिटते रहे लोगों को **निष्काम कर्म** के उपदेशों से भी बात कहां बनती है ! गांव वालों से संवाद चलता रहता है और कई बार सारे जरूरी निर्णय दो चार बैठकों के बाद ही हो जाते हैं। कभी-कभी दो-एक साल भी लग जाते हैं। पर संस्था न तो विचलित होती है, न धैर्य खोती है और न किन्हीं भी परिस्थितियों अथवा व्यक्तियों के प्रभाव में अपनी कार्यपद्धति को बदलती है। नीति और दृष्टि के इस स्थायी भाव का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि जल-जंगल और जमीन के कामों के जो लोग लाभार्थी हैं, उनको यह बखूबी समझ में आ जाता है कि यह एकतरफा काम नहीं है। सरकारी विकास दृष्टि ने इसे एकतरफा बना दिया था तो गांव विकास की छाया तक से वंचित रह गये थे। इस अर्थ में यह प्रक्रिया लाभार्थियों को मात्र **लेने वाला** या **भोक्ता** बने नहीं

रहने देती। क्योंकि वैसे में कहीं आत्मग्लानि का भाव भी जन्म ले लेता है। यह प्रक्रिया उन्हें **कर्ता** बना देती है।

जब समुदाय के हितों को ध्यान में रखकर काम शुरू होता है, तो धीरे-धीरे परस्पर विश्वास व समझ भी पुख्ता होने लगती है। संदेह, ईर्ष्या और अविश्वास तभी तक रहते हैं, जब तक व्यक्ति आत्मकेंद्रित बना रहकर सिर्फ अपने भले की सोचता है। जिन लोगों को सामूहिक काम में आनंद आने लगता है, वहां यह प्रायः देखने को मिलता है कि भाईचारा तो बढ़ता ही है, लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में भी पहले से भी अधिक भागीदारी करने लगते हैं। इसी से एक बात और जुड़ी है जो इन गांवों में बखूबी उभर कर आती है। लड़ाई चाहे जंगलात विभाग के साथ हो, चाहे मत्स्य विभाग, खनन विभाग अथवा जिला प्रशासन के साथ हो, लोग यह सोचकर चुप नहीं बैठ जाते कि इसका कोई तात्कालिक लाभ नहीं होने वाला है। **यहां की संघर्ष गाथा का यदि वस्तुपरक ढंग से विवेचन-विश्लेषण किया जाये, तो यह बात सहज ही समझ में आ जाती है कि यहां के लोगों ने तमाम लड़ाइयों को अपने परिवेश, संसाधनों तथा अपने अस्तित्व की रक्षा की लड़ाई के रूप में तब्दील कर दिया है।**

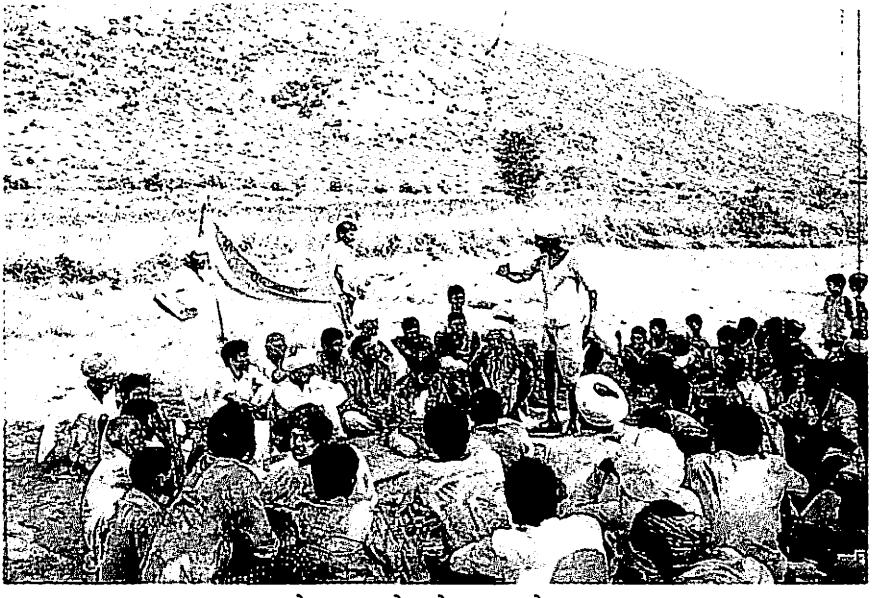

पेड़ लगाओ - पेड़ बचाओ यात्रा

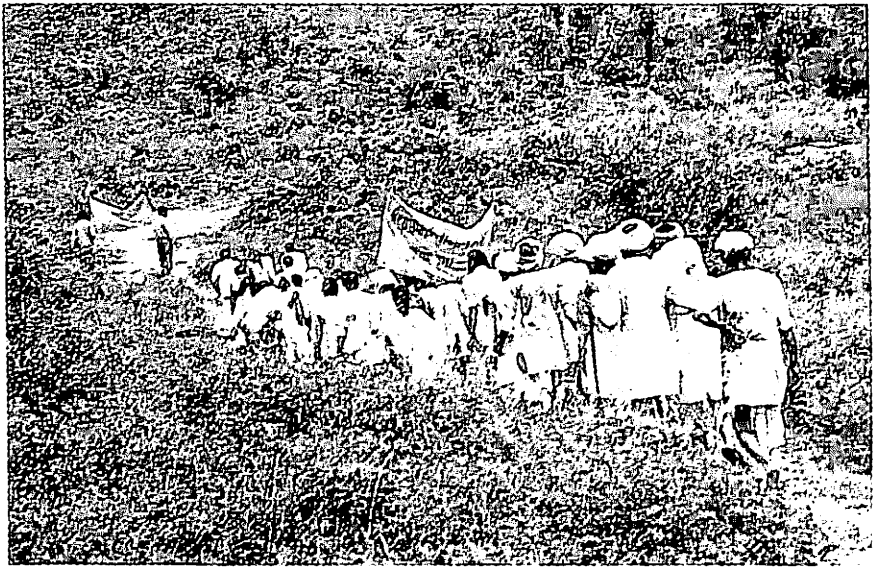

जंगल बचाओ पदयात्रा

जंगलात विभाग के आंतक से मुक्ति के तरीके भी गांव ने ही तय किये तो संघ कार्यकर्ता उनके साथ जुड़ गये। कभी कोई वैचारिक पूर्वाग्रह आड़े नहीं आने दिया गया। इसलिए 1988 में सरिस्का के अंदर के सभी गांवों ने अपनी एकजुटता और संगठन शक्ति का एहसास 22 स्थानों पर अलग-अलग ग्राम समूहों में अखण्ड रामायण पाठ आयोजित करके कराया। इससे जंगलात विभाग के कारिंदों की संवेदना जाग्रत हुई और वे भी पाठ में शामिल हो गये। समस्या का स्थायी समाधान हो गया। इसी प्रकार 1990 में जंगल संरक्षण यज्ञ हुआ। अभी हाल में, दिसम्बर '97 में धराड़ी सम्मेलन भी आयोजित हुआ। साथ ही जब-जब जैसा जरूरी लगा, उसके मुताबिक पदयात्राएं, चेतना यात्राएं, धरने, सड़क रोको, सत्याग्रह, घेराव, अनशन जैसे तरीके भी गांववासियों ने काम में लिये। संघ ने इन तमाम कार्यक्रमों को समर्थन भी दिया। क्योंकि काम के ये सारे तरीके लोगों की अपनी समझ से उपजे थे। इसी प्रकार जल संरक्षण संरचनाओं के निर्माण के लिए स्थान चयन से लेकर डिजाइन कार्य, संचालन, भुगतान, हिसाब-किताब आदि के साथ-साथ पूर्ण हुए कार्यों की देखभाल मरम्मत कार्य भी ग्रामसभा के निर्णय से हुए। इस सबसे यह

साफ हो जाता है कि **तरुण भारत संघ** ने ग्रामवासियों के निर्णयों को पूरा सम्मान दिया है। इस सबका लाभ यह हुआ है कि अपने खोये, भूले, छूटे तरीकों की याद दिलाकर उन्हें अपनी जड़ों से जुड़ जाने में सहायता भर की है। इससे गांवासियों का मनोबल भी बढ़ा है। रूपवास के लोग ताल ठोककर कहते हैं, 'हमारे एनीकट की नींव खोदने से लेकर इसकी ऊंचाई, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई सब हमने तय किये हैं। हम ही इसकी मरम्मत आदि स्वयं मिलकर करेंगे।' यह सुनकर सहज ही समझ में आ जाता है कि पानी आ जाने के बाद, खेती और पशुपालन का काम ठीक ढंग से शुरू हो जाने के बाद लोगों की चेतना में क्या बदलाव आया है।

बोलता है पानी का काम...

जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र के अनेक व्यक्तियों से बात करने पर न केवल नदी द्वारा लाये गये बदलाव की जानकारी मिलती है, लोगों के मन में आये बदलाव का भी पता चलता है। **मौनी बाबा** कहते हैं : जहाज का पानी पुण्य का पानी है। यह सूख गया था। इसे पुनः बहाने के लिए हमने जहाज बांध बनाने के काम में तरुण भारत संघ की मदद की। यह संस्था धरम पुण्य का काम करती है। ऐसे काम में सहयोग करने से भी पुण्य होता है। जब जहाजवाली नदी पर बांध बन रहे थे तो गोवर्धनपुरा, मल्लाना के लोग बहुत चिंतित थे। उनको यह उम्मीद नहीं थी कि इन छोटे बांधों से नदी बहने ही लग जायेगी। उन्होंने सोचा था कि उनके बांध का सारा पानी ऊपर रुक जायेगा, तो बांध सूखा रहेगा। परंतु हुआ उल्टा ही। अब तो बांध में पूरे साल पानी रहने लगा है। सरिस्का बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ता गोवर्धनपुरा निवासी **महेश शर्मा** कहते हैं : 'खनन विरोधी आंदोलन में हम जी-जान से तरुण भारत संघ के साथ थे। लेकिन जब हमें यह ज्ञात हुआ, हमारे बांध का पानी ऊपर रुक जाएगा तो हम तरुण भारत संघ के विरोधी बन गये। इस विषय में तरुण भारत संघ के मंत्री से गरमा-गरमी व बहस भी कई बार हुई। उन्होंने हमें समझाया। तब भी यकीन नहीं हो रहा था। लेकिन कुछ समय बाद ही समझ में आ गया।' जल प्रबंधन के काम से जब सीधे-सीधे लाभ

दिखने लगते हैं तो यह काम भी अच्छा लगने लगता है। अक्सर होता यह है कि लोग और खासकर पढ़े-लिखे लोग पूरी बात को जाने बगैर, सिर्फ सुनी-सुनायी बातों के आधार पर रचनात्मक कामों का विरोध करने लगते हैं। पर गनीमत है कि जो बातें बहस से समझ में नहीं आतीं, काम तो उनका खुलासा कर ही देता है। इसलिए कहा जाता है कि काम बोलता है। हिंदी के बड़े कवि **शमशेर** ने ऐसे ही किसी प्रसंग को ध्यान में रखकर लिखा होगा, **बात बोलेगी, हम नहीं**। बात जब बोलने लगती है, तो नये-नये लोग आगे आते हैं। सहयोग का हाथ बढ़ाते हैं। तरुण भारत संघ की गतिविधियों के साथ नये-नये गांवों के जुड़ने, सक्रिय होने और फिर कार्यकर्ता बन जाने की कहानी ऐसे ही आगे बढ़ती है। यहां यह उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि इस समय तरुण भारत संघ के साथ कार्यकर्ता के रूप में जो लोग गहरे जुड़े हैं, उनके जुड़ाव का गहरा संबंध नदियों के फिर से बहने लग जाने की परिघटना से है।

सरिस्का बाघ परियोजना के टहला रेंज के अधिकारी कहते हैं : तरुण भारत संघ ने लोगों को जल-जंगल एवं जंगली जीवों की रक्षा करना सिखाया है। इसी के कारण अब देवरी, राडा, गुर्जरों की लोसल आदि गांवों के लोग जंगल बचाने लगे हैं। अब इधर शिकारी नहीं आते। शिकारी आ भी जाएं तो लोग तुरंत हमें सूचित कर देते हैं। देवरी के लोगों ने तरुण भारत संघ के दखल से ही हमारे साथ बातचीत शुरू की थी। यह संस्था लोगों में जल-जंगल प्रबंध की कुशलता बढ़ाती है। जंगल के प्रति प्रेम जागृत करने का काम भी करती है। अब इस क्षेत्र में बाघों की संख्या बढ़ रही है। यह बयान तरुण भारत संघ की पीठ ठोकने के इरादे से उद्धृत नहीं किया गया है। मंशा यह रेखांकित करने की है कि **समय की गति आलोचकों को प्रशंसक और प्रशंसकों को भागीदार बना देने में अकल्पनीय भूमिका अदा करती है। पर शर्त इतनी सी है कि काम ऐसा हो, जो आम लोगों की जिंदगी को प्रभावित करता हो। दुखों को थोड़ा कम करने वाला और सुखों को थोड़ा बढ़ाने वाला हो।**

इस क्षेत्र के गांवों में वर्षा जल संरक्षण संरचनाओं के निर्माण खर्च का अध्ययन **डॉ. जी.डी.अग्रवाल** पूर्व सचिव जल प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

भारत सरकार ने करते हुए लिखा है 'एक रुपये प्रति घन मीटर से लेकर दो रुपये प्रतिघन मीटर खर्च आया है, जो कि सामान्य से बहुत कम है। संरचनाओं का डिजाइन और स्थान चयन उपयुक्त है। उन्होंने 166 संरचनाओं का अध्ययन बहुत गहराई से करके पाया कि 84 संरचनाओं को और अधिक बढ़ाये जाने की गुंजाइश लोगों ने छोड़ रखी है। जब उन्हें समय मिलेगा, तो उन्हें बढ़ाया जा सकता है। 61 संरचनाएं बिल्कुल ठीक हैं। अब उन्हें और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। 21 संरचनाएं कुछ अधिक बड़ी बन गयी हैं, लेकिन कुल मिलाकर ये संरचनाएं बहुत अच्छा चित्र प्रस्तुत करती हैं। अच्छे से अच्छे इंजीनियर की देख-रेख में होने वाले काम में भी इतनी खामी रह ही जाती है।' **डॉ. अग्रवाल** ने 36 गांवों में हुए जल संरक्षण कार्य के प्रभाव मूल्यांकन रिपोर्ट में लिखा है, 'इन संरचनाओं से भू-जल पर सीधा प्रभाव पड़ा है। इस काम से पहले अधिकतर कुएं 70 फुट गहरे व सूखे पड़े हुए थे। अब उनमें 15 फुट की गहराई पर पानी उपलब्ध हो जाता है। इस पानी को प्राप्त करने तथा कुएं से निकालने में अब ऊर्जा एवं समय की बहुत बचत होने लगी है। महिलाओं का समय भी बचने लगा है।' नामी इंजीनियर **श्री आनंद कपूर** का कहना है कि तरुण भारत संघ के कार्यक्षेत्र में हुआ कार्य इंजीनियरी मापदण्डों के हिसाब से एकदम सही है। इसकी मजबूती असंदिग्ध है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के **प्रोफेसर एस.के. लुंकर** (अध्यक्ष, भूगोल विभाग), **श्री दिनेश कुमार मित्र** (सिविल इंजीनियर, बाढ़ विशेषज्ञ, बिहार), **प्रो. आर.एच. सिद्दीकी** (अध्यक्ष, सिविल इंजीनियरिंग विभाग, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़) ने अक्टूबर व नवंबर '96 में इन जल संरचनाओं का अध्ययन किया था। उनका कहना था कि लोगों की समझ से बनायी गयी ये संरचनाएं अच्छी हैं। कम खर्चवाली तथा उपयुक्त स्थान पर बनी हुई हैं। किसी में भी कोई दोष नहीं दिखता। सबसे अच्छी बात यह है कि जिनको इनसे लाभ मिलेगा, वे ही इसकी देखभाल व मरम्मत करते हैं। इससे उनके मन में अपनापन तथा देखभाल-मरम्मत करने की जिम्मेदारी का भाव बराबर बना रहेगा। यह कम खर्चवाला छोटा-छोटा सा दिखने वाला काम बड़े लाभ एवं प्रभाव का है। लागत और लाभ की दृष्टि से ये संरचनाएं

बहुत अच्छी हैं। यह भी अच्छी बात है कि काम सहज रूप से फैल रहा है तथा नये-नये लोग इस कार्य को संस्था के साथ मिलकर कर रहे हैं। जल संरक्षण कार्य प्रकृति के संरक्षण व संतुलन बनाये रखने का काम है। मेहनत से लोग जोहड़ बनाकर प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराये जल का प्रबंधन करते हैं। फिर उसका उपयोग करते हैं। अर्थात् **प्रकृति से जितना लेते हैं, उतना ही उसे लौटा देते हैं।**

इस नदी के जलागम क्षेत्र में हुए काम को देखकर **इस कहानी का बयान करने वाले लेखकों** की उपस्थिति में **स्वीडन के राजदूत श्री कार्ल यूगेस्टेन** ने हाल ही में अपनी प्रसन्नता इन शब्दों में व्यक्त की, **यह बहुत बड़ा काम हुआ है। बदहाल लोगों की जिंदगी को खुशहाल बनाने के काम में यहां हुआ काम प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। इस तरह के कामों की एक खूबी यह भी है कि बड़े सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के बगैर भी लोगों की जिंदगी को बेहतर बनाया जा सकता है।**

चेहरों पर लिखा बदलाव...

जहाजवाली नदी के किनारे के गांवों में जो बदलाव आया है, ऊपरी चमक-दमक को आधार बनायें, तो संभावना इस बात की है वह बदलाव लगे ही नहीं। बुनियादी तौर पर इस बदलाव का संबंध जीवन पद्धति से है। आपाधापी और संकीर्ण स्वार्थों के चलते जो सामूहिकता ग्रामीण जीवन से लुप्त हो चली थी, वह फिर से विकसित और सम्मानित होती दिखती है। जिन चीजों पर चर्चा करने के लिए न तो लोगों के पास समय था, और न दिलचस्पी, आज वे वापस चर्चा के केन्द्र में आ गयी हैं। विकास के मौजूदा रूप और ढांचे ने लोगों के मन में जो उदासीनता पैदा कर दी थी, वह टूटी है। और **इस टूटने-बनने के क्रम में ही कहीं विकास के वैकल्पिक प्रारूप के बीज खोजे जा सकने हैं। समुदाय सुखी और प्रसन्न रहेगा, तो जाहिर है व्यक्ति दुखी और अप्रसन्न नहीं रह सकता। खुद के हित जब औरों के हित से जा मिलते हैं, तो ऐसे सरोकार पैदा होने लगते हैं जो व्यक्ति और परिवार तक सीमित नहीं रहते।** बल्कि सच तो यह है कि इसका अतिक्रमण करते हैं। जल, जमीन

और जंगल पर केंद्रित चर्चाएं यहां-वहां, हर गांव के स्तर पर सुनाई पड़ने लगें, तो यह मान ही लिया जाना चाहिए कि बहुत कुछ बदला है। **मेरे** और **तेरे** की जगह **हमारे** का प्रतिष्ठापित हो जाना इस बदलाव का सबसे बड़ा संकेतक है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि **बाजार** और **विज्ञापन** पर आधारित इस **भोगवादी** दौर में मध्य वर्ग और उच्च वर्ग के लोग पर्यावरणीय संकट से बेखबर हो सकते हैं **पर तथाकथित विकास के लाभों से वंचित ठेठ देहाती लोग पर्यावरण को बचाने के लिए एकजुट हो गये हैं।** यह बदलाव इसलिए भी उल्लेखनीय है कि तथाकथित आगे बढ़े समाज की विकास तृष्णा ने स्व-अभिक्रम व रचनात्मक काम की कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी है। गुंजाइश अगर कहीं बची है, तो उन लोगों के ही बीच, जिन्हें पिछड़ा और गंवार कहा जाता है। यह बात पूरे देश के पैमाने पर भी कही जा सकती है क्योंकि **पर्यावरण को बचाने के असली संघर्ष आदिवासी और पिछड़े इलाकों में ही हो रहे हैं। यह दूसरी बात है कि इन तबकों के लोग उतने मुखर नहीं हैं कि उनकी बात सत्ता के गलियारों में गूंजने लगे।** पर यह स्थिति भी जल्दी ही आने लग सकती है, क्योंकि जगह-जगह पर सामाजिक सरोकारों वाले सक्रिय समूहों की गतिविधियां इन पिछड़े माने जाने वाले लोगों के साथ जाकर मिल रही है। ऐसे अधिकांश समूह लोक परंपरा और पारंपरिक मेधा में सामाजिक रूपांतरण के बीज खोजते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इन बीजों के वाहक भी वे ही हो सकते हैं जो लोक को समझते हैं, उसके जीवंत तत्व को ग्रहण करने में सक्षम हैं और लोक प्रयत्नों का सम्मान करते हैं। तरुण भारत संघ के काम का महत्त्व भी मूल रूप से उसकी इस दृष्टि में ही निहित है कि जो अपने पास है, उसे दूसरे पर थोपा नहीं जाये बल्कि जो स्थानीय संदर्भ में उपयुक्त और उपयोगी है, उसे सहारा बनाकर पुनर्निर्माण के काम में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित की जाये।

तेवर पहलकदमी के...

इस नदी के जलागम क्षेत्र के गांवों के लोगों के जीवन को नजदीक से देखने पर एक नयी और उत्साहवर्द्धक चीज सामने आती है।

शहर में जो आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता एकदम गायब हो गयी है, वह यहां बखूबी देखने को मिल सकती है। यहां उद्देश्य शहर और गांव का समाजशास्त्रीय फर्क सामने लाना नहीं है, बल्कि यह रेखांकित करना है कि शहर में लोग सुविधाओं व सेवाओं के अभ्यस्त हो जाने के कारण लगभग हर चीज में दूसरों पर निर्भर रहने लगे हैं। मामला चाहे बिजली का **फ्यूज** लगाने का हो या नल की टोंटी का वाशर बदलने का। ऐसा नहीं है कि शहर में सब लोग खुशहाल हैं, इसलिए छोटे-छोटे कामों के लिए भी दूसरों का मुंह जोहते हैं। इन गांवों में देखें, तो भविष्य के समाज की संरचना के कुछ दिशा-निदेशक सूत्र हाथ लग सकते हैं। अब ये लोग, चाहे बात संगठन में बिखराव की हो अथवा जोहड़ बांध की मरम्मत की हो, बात-बात में ही ऐसा माहौल बना लेते हैं कि बिना किसी बाहरी व्यक्ति की मदद के चीजों को देर-सबेर दुरुस्त कर ही लेते हैं। किसी बड़े या अधिक पढ़े-लिखे गांव में टूट-फूट की मरम्मत स्वयं गांववासी करने हेतु आगे नहीं आते, तो तरुण भारत संघ कार्यकर्ता भी स्वयं कोई निर्णय नहीं लेते। क्योंकि इस संस्था के कामकाज के पीछे औरों से अलग जो दृष्टि रही है, वह इस चेतना के संचार में ही व्यक्त होती है कि गांव के लोग ही स्वयं अपने स्तर पर निर्णय करें और उन्हें क्रियान्वित करने में अपने योगदान के बारे में स्पष्ट हों। जब तक यह स्थिति नहीं आती, कितने ही भले और बड़े काम शुरू किये जायें, संदेश यही जाता है कि एक तरफ वे हैं, जो काम करवा रहे हैं तथा दूसरी तरफ वे हैं, जिनके लिए काम हो रहा है। ऐसे में यदि काम कराने वाले लोग गांव से विदा ले लें, तो जो कुछ हो चुका है, वह भी टिक नहीं पाता। और **शुभ संकेत और समाचार यह है कि ये गांव के लोग चाहे टिकाऊ विकास (सस्टेनेबल डवलपमेंट) के सैद्धांतिक सूत्रों को न समझते हों, इसके सार तत्व को अवश्य समझते हैं।**

सपनों से उपजी यह हकीकत...

सामाजिक विषमताओं के इस दौर में (जब समृद्धि और विपन्नता के बीच 160 गुना फासला हो) नैसर्गिक अंतर्संबंधों को प्रतिष्ठित करने का

जंगल के जोहड़ में बाघ-बाघिन

काम कोरा सपना लग सकता है। लेकिन कौन सा युग और कौन सा समाज ऐसा रहा हो सकता है, जहां बिना सपना देखे कोई बड़ा बदलाव आ गया हो। बड़े बदलाव के लिए सपना भी बड़ा होना चाहिए और **सपना तब बड़ा बनता है, जब वह अकेली आंख का सपना न रह जाये। एक साथ हजारों-हजार आंखें जिस सपने को देखती हैं, उसमें रंग-भरने का काम करने के लिए आंखों से दुगुने हाथ होते हैं।** सपना जब तक बूंद-बूंद पानी तक सीमित था, तब तक वह छोटा और निजी सपना था। **बूंदों को मिलाकर नदी बनाने का सपना कितना बड़ा सपना हो सकता है, और कितनी बड़ी हकीकत हो सकती है,** यह फिर से **जी उठी जहाजवाली नदी** के क्षेत्र में जाकर, लोगों से मिलकर और उनके चेहरों की लिखावट पढ़कर ही समझा जा सकता है। ❑

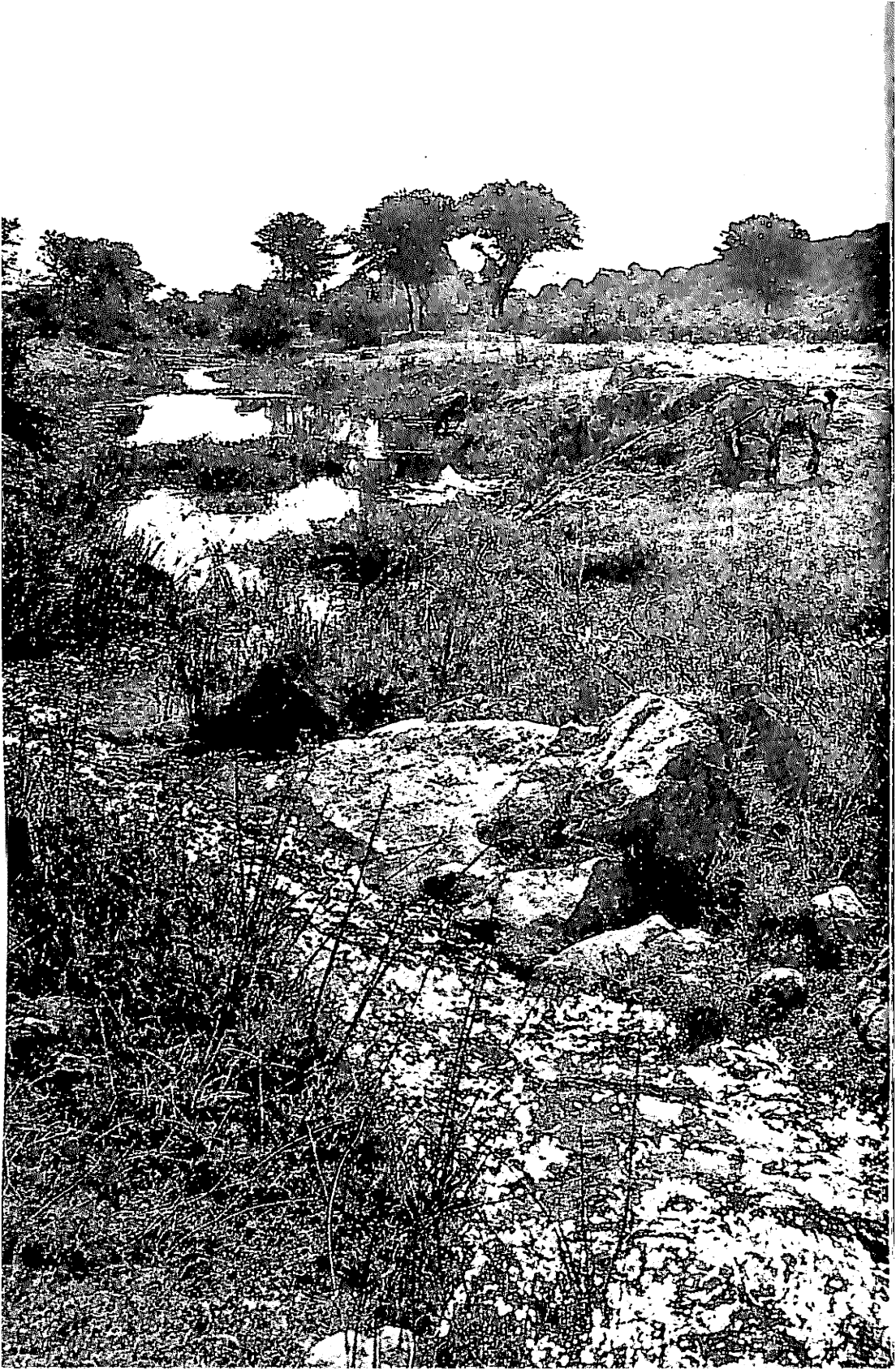

गांव का जोहड़

जहाज नदी के जलागम क्षेत्र में खजूर की पत्तियों से बढ़ा रोजगार

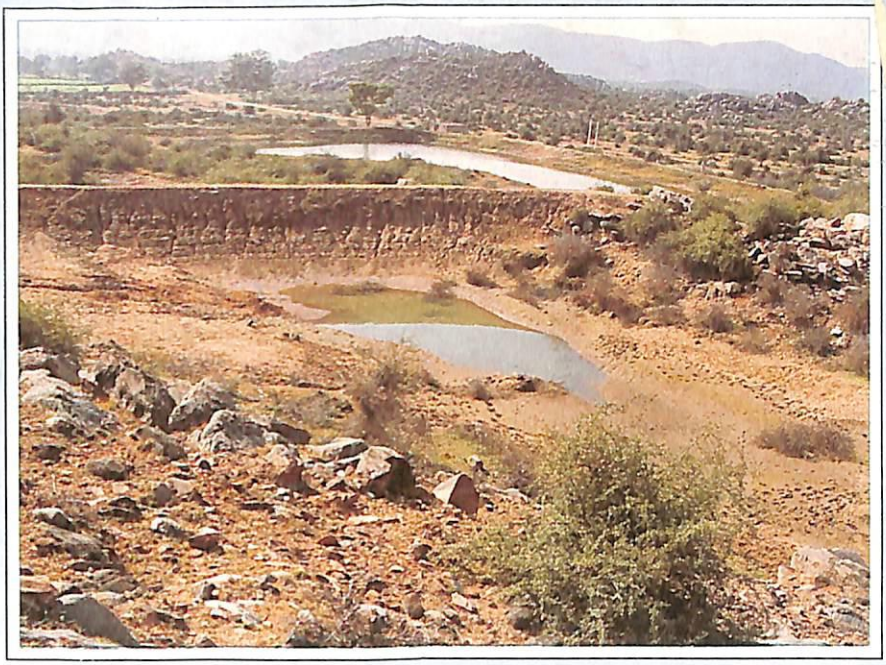

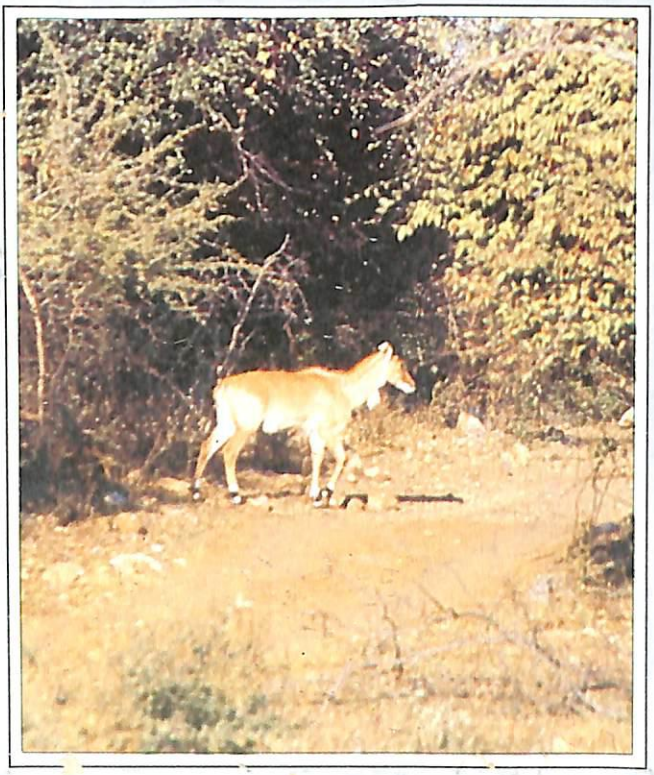

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा-किशोरी,
थानागाजी,
अलवर-301 022

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

रु. 21/-